के
वासुदेव

के
वासुदेव

बुद्धि के ठेकेदार

लेखक
वासुदेव गोस्वामी

प्रकाशक
गोस्वामी पुस्तक सदन
जानकी पार्क रोड, रीवा

प्रथम संस्करण
दिसम्बर १९५५

मूल्य एक रुपया चार आना

मुद्रक — दि इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स लि०, जीरो रोड, इलाहाबाद

टेंडर नोटिस

कोई भी ठेका तब तक विधि सम्मत नहीं होता, जब तक उसके पहले टेंडर नोटिस देने की खानगी कार्रवाई नहीं पूरी की जाती। ठीक इसी प्रकार कोई भी ग्रन्थ आज कल ग्रन्थ नाम तब तक नहीं पाता, जब तक कि भूमिका, प्राक्कथन, दो शब्द, चार अक्षर जैसी कोई रस्मी कार्रवाई उसके पहले पूरी नहीं की जाती। यह लोगों की अकृतज्ञता है कि पी० डबल्यू० डी की प्रणाली अपना कर भी लोग उसकी शब्दावली का तिरस्कार करते हैं। मैं वैसा नहीं करूँगा, शायद कर भी नहीं सकता क्योंकि मेरा पाला 'ठेकेदार' से पड़ा है। 'ठेकेदार' भी एक नहीं अनेक और वे भी बुद्धि के। मैं इस लिये अपनी इस रस्म अदायगी को टेंडर नोटिस ही कहूँगा।

बुद्धि के ठेकेदार आप के सामने हैं। इन ठेकेदारों के जनक हैं श्री वासुदेव गोस्वामी जो आज लगभग तीस वर्ष से अखिल ब्रह्माण्ड मूर्ख महा-मण्डल के निर्विवाद रूप से प्रधान मंत्री पद पर विराजमान रहे हैं। इस महान् संस्था के भार वहन में उन्हें कैसे कैसे ठेकेदारों से पाला पड़ा है इसी का संक्षिप्त दिग्दर्शन प्रस्तुत संग्रह में उन्होंने कराया है। आज के समस्या-बहुल, चिन्तन बहुल और चश्मा-बहुल युग में गंभीरता के विरुद्ध आचरण करना ही बहुत बड़े साहस का काम है जब स्वप्नों की रुपहली रात में लोग नहा रहे हों, कल्पना के आंसुओं की शबनम से भीग रहे हों और कौशिक दृष्टि से अन्धकार को चीरने की कोशिश कर रहे हैं तब हँसी की किरण जो छिटकाना चाहता है या दूसरे शब्दों में मूर्खताओं का उद्घाटन करना चाहता है उसके साहस पर दाद देनी चाहिये। और मैं इसी लिये अपने दैनन्दिन विनोद के मित्र वासुदेव गोस्वामी को साधुवाद देता हूँ कि उन्होंने अपनी हास्य प्रतिभा के प्रस्फुटित पुष्पों

करते हैं।

को एक सूत्र में गूंथ कर भारती को इस ग्रन्थ के रूप में माल निवेदी है।

हिन्दी का हास्य साहित्य बहुत ही अकिञ्चन है और हास्य के नाम पर अधिकतर या तो अश्लीलता का प्रश्रय दिया गया है या कुरुचि और विडम्बना का। शुद्ध और परिष्कृत हास्य के छींटे बहुत कम मिलते हैं, हास्य का मूल गुण होना चाहिये अकलुष भाव से मनुष्य की अन्तर्निहित उत्फुल्लता को उकसा देने की शक्ति। जो हास्य विद्रूपीकरण में परिणत होता है या आक्षेप का लक्ष्य बनाता है उसका भी साहित्य में स्थान है पर वह इन दशाओं में रस-परिपाक नहीं करा पाता। वह अपने में पोष्य न बनकर किसी दूसरी ध्वनि का पोषक बन कर रह जाता है। प्रताप नारायण मिश्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, श्री नारायण चतुर्वेदी, अन्नपूर्णानन्द, बेढब बनारसी, चोंच और प्रभाकर माचवे की देन शुद्ध हास्य के क्षेत्र में आकलनीय है। इस ग्रन्थ के रचयिता गोस्वामी जी ने भी इसी परम्परा को आगे बढ़ाया और है मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि उनकी इस कृति से हास्य साहित्य के रसिकों को परितृप्ति मिलेगी।

'क्या करूँ', 'यशोजीवी चम्पूकार संघ', तथा 'संदेश और साहित्य-पूर्ति' शीर्षक निबन्धों में छाया-युग की बदौलत अनधिकार साहित्यिक बनने वालों को लक्ष्य करके बहुत ही सुन्दर ढंग से चोट की गयी है; जो व्यक्तिगत आक्षेप से रहित होने के कारण निर्मल पर साथ ही वास्तविकता से गर्भित होने के कारण प्रभाव पूर्ण भी हैं। 'रायदानीलाल बुक्कड़ और उनके वंशधर' तथाकथित शोध की संभावित अज्ञताओं पर अच्छी चोट है। 'मर्यादा-वीर' अनुशासन के नाम पर अनाचार करने वालों की उपहासास्पद स्थितियों का बेजोड़ आकलन है। सेकिंड-क्लास का सफर; 'टार्च की ज्वाला' और 'चाय का चस्का' इन तीन निबन्धों में लेखक ने इस तथ्य को निदर्शित करने की कोशिश की है कि अनुभव यह नाम आदमी अपनी विगत मूर्खताओं को ही देता है। अनुभव मूर्खों की पाठशाला है क्योंकि वे दूसरी जगह सीखो के लिये प्रस्तुत

नहीं होते । 'तीन प्रतीक' साहित्य संगीत कलाविहीन वाले श्लोक को एक व्युत्पन्न टीका है ।

लेखक की शैली अपनी है, उर्दू की चोंचलेबाजी से निखर और साथ ही घटाटोप से मुक्त: ऊपर से वह बहुत तर्कबद्ध और गम्भीर, पर भीतर भीतर हास्यनिर्भर गर्भित । हास्य शिष्ट होते हुए भी गहन नहीं है ।

इसी प्रसङ्ग में मैं कालिदास का वह वाक्य दुहराना चाहूँगा, 'परिहास विकल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः; दुष्यन्त ने अपने शकुन्तला प्रणय की बात हँसी हँसी में अपने वयस्य माढव्य से कही पर इस डर से कहीं वह विनोदी मित्र बात पचा न सके और रानियों तक पहुँचा दे, उन्होंने कह हरताल फेरी कि मैंने हँसी की है, इसे सच न समझ लेना । सो हँसी की बात ऐसी ही होती है, कहने के ढङ्ग से यह नहीं लगता कि सचमुच कोई ऐसी बात कही जा रही है जो जीवन की वास्तविकता से संबद्ध है, पर बात वह होती है गहराई में जाने वाली । लोग उसे हँसी कह कर टालना चाहते हैं; पर वह मन में सत्य के रूप में टिक हो जाती है । गोस्वामी जी के निबन्ध भी परिहास-विजल्पित होते हुये भी जीवन के सत्य को छूते हैं, यह मैं इंगित करना चाहूँगा ।

अन्ततः मैं इस टेंडर नोटिस के व्याज में चाहूँगा कि लेखक अपनी सहज विनोदिनी प्रतिभा से हिन्दी का हास्य-प्रान्तर अधिकाधिक शक्ति से भरे, जिनके द्वारा हिन्दी का पाठक अपने सामान्य-बोध को अधिक तीव्र बना सके ।

रीवा, गोपाष्टमी
संवत् २०१२

—विद्या निवास मिश्र

अनुक्रमणिका

—०—

स्वागताध्यक्ष का भाषण

कृपा कर आये हो अनजान !
आपका स्वागत है श्रीमान ।

समझकर अपना ही घर इसे, मांग कर कर लेना जलपान ।
यहाँ के हम सब मूसर लोग, आप आये हैं नूतन थान ।।
आपका स्वागत है श्रीमान ।।
आपने किया त्याग का त्याग, समझ का किया विकट बलिदान ।
कोई माने या माने नहीं, बने हो तुम जग के मतिमान ।।
आपका स्वागत है श्रीमान ।
असुविधाओं पर अब तक कभी, आपने नहीं दिया है ध्यान
इसी से हम लोगों ने यहाँ, नाम करवा दी पूरी थान ।।
आपका स्वागत है श्रीमान ।।
हमारे छोटे छोटे गीत, तुम्हारे लंबे लंबे कान ।
कहाँ हैं हम इस लायक, जो कि रचना का कर सकें पहचान ।
आपका स्वागत है श्रीमान ।।

माननीय सभापति जी एवं उपस्थित बंधुओ,

अखिल ब्रह्माण्ड मूर्ख महामंडल के इस अद्वितीय अधिवेशन के अवसर पर आपके सम्मान में यह स्वागत-पान अर्पित करते हुए हृदय को इतना हर्ष हो रहा है कि वह वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस प्रकार का व्यक्तीकरण उन लोगों की परम्परा है जो अपने को पण्डित मानते हैं। उन लोगों ने आपस में सलाह करके अनेक कल्पित नामों से सभाएँ बना ली हैं, और हमलोगों को भी शिक्षित कर अपने-जैसा बना लेने के अनेक जाल फैला रक्खे हैं। जब दिन में चलने

कार्लो पाठशालाओं से उनका जी नहीं भरा, तो रात्रि-शिक्षालयों की भी उन लोगों ने स्थापना की। वाचनालयों तथा पुस्तकालयों के द्वारा भी मूर्खता पर जो प्रहार हो रहा है, उससे आप भली भाँति परिचित हैं। मनुष्यों के अतिरिक्त बंदर, कुत्ता, हाथी, घोड़ा, तोता, कबूतर आदि पशु-पक्षियों तक को शिक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है, यह सब कलयुग का प्रताप है। इन पढ़े-लिखे कहाने वाले लोगों ने अपनी प्रशंसा के इतिहास स्वयं ही लिख कर 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू' की कहावत को चरितार्थ किया है। मूर्खता की सच्ची सराहना करने में इनका स्वार्थी हृदय साथ न दे सका। इस प्रकार के पक्षपातपूर्ण व्यवहार उन्हीं के ग्रंथों से सिद्ध किये जा सकते हैं।

शिक्षा पर मूर्खता की विजय का एक प्रसिद्ध उदाहरण यही है कि विद्योत्तमा--जैसी विदुषी को तत्कालीन महामूर्ख कालिदास ने शास्त्रार्थ में हरा दिया था। अपने ही आसन की आधार-भूत वृक्ष-डाल को जड़ की ओर से काटने वाले उसी कालिदास को सयाना होने पर राजा भोज ने अपने दरबार का रत्न माना था। अपने आप को 'मंदः कवियश.प्रार्थी' घोषित कर कालिदास ने अपने आश्रयदाता को धोखे में नहीं रखा। आदिकवि वाल्मीकि जी, जो विद्वानों से भी समान रूपेण पूजित हैं, दो अक्षर के सीधे से 'राम' नाम का 'मरा' उच्चारण करके ही ब्रह्म-समान हुए थे। क्या इस विशाल जन-समुदाय में एक भी माई का लाल ऐसा है, जो आज उस उच्चकोटि का अशुद्ध उच्चारण करने की क्षमता रखता हो। जिस देश में मूर्खता का इतना ह्रास हो चुका है, उसके भविष्य के सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है?

ससुराल तक अपनी पत्नी का पीछा करनेवालों में गोस्वामी तुलसीदासजी का नाम सदा ही आदर-भाव से लिया जाता रहेगा। पत्नी के एक ही ताने से रुष्ट होकर घर से निकल भागने पर उनको और भी ऊँचा आसन मिला होता, यदि वे सूरदास की भाँति अक्षर-ज्ञान से वंचित

बने रहने और अपनी रचनाओं को किसी दूसरे से लिखाते जैसा कि श्री वेदव्यास जी ने भी किया था। उनके लेखक श्री गणेश जी महाराज स्टेनोग्राफरों के आदि देवता हैं। तुलसी की इस भूल ने उन्हें सूर से आगे बढ़ने में रोड़ा अटकाया। केशवदास ने तो अपने आप ही 'मन्दमति' लिखकर 'कविप्रिया' में जो गर्वोक्ति कही है, उसे भी सुन लीजिये :—

भाषा बोल न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भौ मन्दमति, तिहि कुल केसव दास॥

इन्हीं कारणों से 'सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केशव दास' उक्ति हिन्दी संसार में चल पड़ी। सूरदास का प्रभाव तो इतना बढ़ गया कि प्रत्येक अन्धा सूरदास कहलाने लगा किंतु आँखवाले लोग तुलसीदास न हो सके। जनता ने सूर के प्रति सहानुभूति दिखलाई, तुलसी का सम्मान किया, किन्तु इन दोनों के मध्यवर्ती दृष्टिकोण को अपशकुन के रूप में देखा। विश्व-वस्तुओं को भेद भरी दुनियाँ ने न जाने क्यों समन्वय का आनन्द नहीं दिया। "मसि कागद छूयौ नहीं" गाकर भी कबीर पंडितों की खींचातानी से न बच पाये। उन्होंने प्रचार के बलपर इन सबको अपने में मिला लिया। यद्यपि होली के अवसर पर गाये जाने वाले आपके अभिधा-शृंगार के सरस गीतों का लोक में 'कबीर' नाम अब तक प्रचलित है, तथापि शिष्ट साहित्य में 'तर्ज राधेश्याम' को छोड़कर और किसी शैली का नाम साहित्यकार के नाम के साथ नहीं जोड़ा गया।

सौभाग्य से पण्डित परिषद् के अन्तर्गत कुछ लोगों का एक ऐसा गुट बन गया है, जो आलोचक-वर्ग कहलाता है और कभी-कभी मूर्खता के उदाहरण भी सामने ला देता है। इंगलैंण्ड के इतिहास-लेखकों ने जेम्स प्रथम को 'वाइजैस्ट फूल' माना है। भारतीय इतिहास में मुहम्मद तुगलक का नाम मूर्खता के साथ अमर है। किन्तु आप लोगों का ध्यान इस गम्भीर स्थिति की ओर आकर्षित करना है कि यदि मुहम्मद तुगलक की चांदी के स्थान पर तांबे का सिक्का चलाने की नीति सफल

हो गयी होती, तो पण्डित परिषद् उसे अपने दल का घोषित कर लेता; क्योंकि इस अवसरवादी संस्था ने सफल हो जाने के कारण चांदी से कागज में भारतीय मुद्रा-प्रणाली के परिवर्तित हो जाने के कार्य की सराहना ही की है। इसने ऐसे साहित्य की रचना की, जिसमें बुद्धिमत्ता की विजय और मूर्खता की पराजय कल्पित है।

इस प्रकार की हीन दशा का कारण कुछ वे जातिद्रोही हैं, जो वास्तव में मूर्ख होते हुए विद्वानों के दल में जा मिले हैं। किन्तु हर्ष का विषय है कि उन्होंने अपने सम्प्रदाय को नहीं बदला और लक्ष्मी की आराधना में अपनी उपास्या देवी के वाहन-स्वरूप दृढ़ता से कार्य कर रहे हैं।

इन पण्डितों ने हमारे धर्म में भी हस्तक्षेप किया है। दीपावली के अवसर पर जब कि हमारी एकमात्र आराध्या देवी का पूजन होता है, इन पंडितों ने सत्तारूढ़ होकर जुआ की बन्दी करवा दी और स्वयं प्रतिदिन क्लबों में विभिन्न प्रकार के नित नूतन जुआ खेलते रहते हैं। क्या यह पक्षपात नहीं है? उलूक-वाहिनी लक्ष्मी देवी का स्वागत करने के लिये दीपावली की रात्रि में चकाचौंध पैदा करनेवाला प्रकाश फैलाना इन्हीं की बुद्धि की उपज है।

ब्रह्मचर्य के महत्त्व को विद्वानों ने भी स्वीकार किया है, किन्तु सरकार की ओर से उसकी रक्षा का क्या उपाय किया गया? रेलगाड़ियों में जनाना डिब्बा जिस प्रकार अलग बना है, वैसा पुरुषों के लिए अलग से नहीं बनाया गया, जिसमें ब्रह्मचारी लोग निश्चिन्त होकर सफर कर सकें, और उन्हें नारी-स्पर्श का अंदेशा न रहे।

भारतवासियों का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। इसके प्रधान दो कारण हैं। एक तो अस्पताल की सुन्दर एवं सुखद इमारतों को देखकर लोगों का मन बीमार होने को ललचा उठता है और दूसरा राजकीय कार्यालयों से छुट्टी पाने के लिए डाक्टरी सार्टिफिकेट उपलब्ध कर लेने का भी यह साधन निराश्रित

यात्रुओं के लिए सुगम है। अदालती आवश्यकताएँ भी लारियों द्वारा बहुत कुछ पूरी हो जाती हैं। स्वास्थ्य-विभाग के लोगों का गाँव में इतना अधिक दौरा होने लगा है कि उनकी मोटरों से उड़ी धूल उठकर फिर जमीन पर नहीं लौट पाती। इससे वातावरण सदैव ही धूल-धूसरित रहता है। गाँवों में इलाज की असुविधा तो रहती ही है, फिर इधर यह विभाग मक्खी मार रहा है। अभी कुछ दिनों से गाँववालों को यह सूचना दे दी गयी है कि वे बीमार होने का निश्चित कार्यक्रम बना लें। इससे अब वे केवल उन्हीं दिनों में बीमार होते हैं जब कि औषधि वितरण करने वाली मोटर उनके गाँव में पहुँचती है।

व्यवहार में 'फूल प्रूफ सिस्टम' मूर्ख और विद्वानों पर समान रूप से लाभदायक सिद्ध हुआ है। इस प्रणाली के द्वारा त्रुटि होने की संभावना चारों ओर नष्ट कर दी जाती है। कुछ ही दिनों की बात है कि जब एक आँगन के द्वार से यातायात बन्द करने के लिए एक सूचना पट्ट लटकाया गया, फिर लोहे के सीकचेदार किवाड़ लगाये गये; परन्तु उससे केवल स्थूल शरीरधारियों पर ही प्रभाव पड़ा। तदनन्तर उन किवाड़ों से कांटे लपेटे गये, फिर वहाँ एक सिपाही बैठाया गया। किन्तु उस द्वार से यह मार्ग बन्द न हुआ; तब पास ही में एक दूसरा द्वार बना दिया गया। इससे भी जब पूरी सफलता न मिल सकी, तब वह पुराना द्वार ईंट-चूना से स्थायीरूपेण बंद कर दिया गया तथा अंग्रेजी में रास्ता बंद होने की सूचना देनेवाला नोटिस-बोर्ड भी लगा रहने दिया गया। इस दुहरी व्यवस्था से मूर्ख लोग द्वार बंद देखकर और पढ़े-लिखे इस नोटिस-बोर्ड को पढ़कर लौट जाने लगे और जैसा चाहा जाता था, मार्ग बंद हो गया। गलती हो जाना ही मनुष्य का धर्म जानकर मैंने मंडल के कार्यों पर 'विहंगमदृष्टि' डाली है और उनका 'सिंहावलोकन' भी किया है। यदि आपको इसमें मानवीयता के दर्शन हों, तो घबराइये नहीं। या तो आप बन्दर की उड़ान मारिये या दो कदम और आगे बढ़ाइये, आपका यह भ्रम दूर होगा।

हमारे प्रधानमंत्री श्री नेहरूजी ने अपने नाम के साथ पंडित न लिखने के लिए जो आदेश दिया है, वह वर्ग-भेद मिटाने की ओर एक नया कदम है। अनेक व्यक्ति जो अपने को पंडित न लिखे जाने पर अपमान मानते थे, अब श्री से ही सन्तोष पाने लगे हैं। हाँ, श्री की संख्या बढ़ते-बढ़ते १०८ से १००८ हुई और फिर अनन्त तक पहुँच गयी। क्या हम इसे लक्ष्मी की सरस्वती पर विजय नहीं मान सकते ?

सुदूर स्थानों से मूर्ख मंडल का प्रतिनिधित्व करने के लिए यहाँ आने में आपको जो कष्ट हुआ है उसके लिए हम अखबारों में आपका नाम छपने की व्यवस्था कर आपका गौरव बढ़ाने की चेष्टा करेंगे। उन समाचार-पत्रों को आप अवश्य खरीदें और कटिंग रख लें। मैंने आपका बहुत समय इसलिए लिया है कि उसे नष्ट करने में आपको अन्य साधनों का उपयोग न करना पड़े। यदि मेरे कथन में भूल से कोई विद्वत्ता की बात आ गई हो तो क्षमा करें।

भवदीय, श्रद्धास्पद,

स्वागताध्यक्ष

तीन प्रतीक

साहित्य-संगीत-कलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः ।

साहित्य-सेवियों में इस श्लोक का जितना अधिक प्रचार है, उतने ही दूर वे इसके गूढ़ तत्त्वों से रहे हैं। प्राचीन साहित्य में पद्य की प्रधानता रहने के कारण प्रत्येक विषय का विवेचन छन्द-बद्ध-भाषा में होता रहा है। सामान्यतः छंद में चार चरण माने गये हैं। चरणों की यह संख्या पशुपदों के तुल्य होने से छन्द अथवा साहित्य को एक पशु के प्रतीक में मानना असंगत नहीं कहा जा सकता। वेदों में भी शब्द को एक ऐसा वृषभ बतलाया गया है, जिसके तीन पैर और चार सींग हों। इस वैदिक कल्पना में मुझे अपनी पाठशाला के खेलों में की 'थ्री लैगेड रेस (तीन पैर की दौड़) का आभास मिला, क्योंकि चार सींगों से युगश्रृङ्गधारी दो मस्तक सहज ही समझे जा सकते हैं। किन्तु यहाँ तो साहित्य, संगीत और कला से विहीन व्यक्ति को केवल ऐसा पशु बताया गया है, जिसके सींग-पूँछ न हों। इसका अभिप्राय यह तो नहीं है (और न यह निकालना ही चाहिये) कि इनसे परिपूर्ण व्यक्ति पुच्छ-विषाण से युक्त समझा जाय?

आपने कई विद्वानों को 'विहंगम दृष्टि' डालते हुए एवं 'सिंहावलोकन' करते हुए देखा होगा। यदि आप उन्हें 'धुरंधर' कहें, तो वे प्रसन्न ही होंगे। महर्षि वेदव्यास जी ने भी श्रीमद्भागवत के खंडों को स्कंध की ही संज्ञा दी है, जिसकी दृढ़ता और सौन्दर्य के लिए वृषभ प्रसिद्ध है।

दिल और दिमाग की औसत है गला, इसी से वह इन दोनों के बीच में बनाया गया है। तभी हृदय के उद्गारों को दिमागी बाना

पहिना कर लोग कंठस्थ कर लेते हैं और 'गुर्गा' कहलाने लगते हैं। कंठ के साथ 'गुगा' के इस संयोग ने ही कदाचित् कोषकारों को 'गुण' का अर्थ रस्सी लिखने की प्रेरणा दी, जिससे घबराकर कई लोग एक दूसरे की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने के लिए बाध्य हुए और इस निमित्त कंठ–लँगोट (नेकटाई) धारियों को भी बाह्य उपचार अपनाकर 'दाद' देने के लिये कटिबद्ध होना पड़ा।

साहित्य को पशु के प्रतीक में समझने के लिए चाहे कुछ श्रम पड़े, किन्तु संगीत को 'विषाण' और कला को 'पुच्छ' के द्वारा व्यक्त करने में किसी तर्क की आवश्यकता नहीं रह जाती। आदि वाद्यों में विषाण की गणना है और उसकी नकल करके बिगुल, तुरही, शहनाई प्रभृति वाद्यों का निर्माण हुआ। साहित्य-मनीषियों के द्वारा मान्य रसराज का नाम 'शृङ्गार' रखे जाने में भी 'शृङ्ग' का महत्वपूर्ण योग रहा है। नाद का प्रतीक होने के अतिरिक्त इससे बल का भी बोध होता है।

इसी प्रकार चित्रकार की तूलिका का सर्वश्रेष्ठ भाग गिलहरी आदि की पुच्छ की अपेक्षा रखता है। अतः कला के प्रतीकों में पुच्छ का स्थान सर्वोच्च है। जिस प्रकार बल का प्रदर्शन करने में विषाण है, उसी प्रकार निर्भयता का बोध कराने में पुच्छ को ऊंचा स्थान मिला है। ध्वजा की भांति यह मस्तक से ऊंचा उठकर आकाश में लहराने लगती है उसके अधिष्ठाता का गर्जन भी उस समय किसी आंदोलन के नारे से कम भयावना नहीं होता।

पूँछ की तुक होने पर भी मूँछ उससे कई बार मात खा चुकी है। ऊंचा उठाने के लिए उसे हाथ का सहारा चाहिये। उसमें पूंछ की भांति स्वयं-संचालन की शक्ति नहीं है। हाँ, झींगुर ने अवश्य ही अपनी मूँछ पर काबू पाया है और वह अपनी मूँछ के बाल जिस ओर चाहे घुमा लेता है। मनुष्य ने अपनी श्रद्धा प्रकट करने में पूँछ के त्याग का विधान अपनाया। किन्तु अपनी जन्मभूमि (अधर-धरा) से बिछुड़ने पर मूँछ में

किसी प्रकार की विकलता नहीं पाई गयी, जब कि छिपकली की पूँछ कट जाने पर भी कुछ समय तक तो वह इस प्रकार छटपटाती है जैसे जल से बिछुड़ने पर मछली तड़पती है।

स्थायीलेखा सर्वोच्च आसन मान विनाश और इच्छानुसार उनने नी ऊँची लहरानेवाली पुच्छ आगे-पीछे ऊपर-नीचे नर्तन और कला को साहित्य के विशिष्ट अंगों के रूप में प्रकट करते हैं।

वर्तमान युग में पद्य की अपेक्षा गद्य का अधिकाधिक विकास हो रहा है। इससे आदमी भूलता जा रहा है कि एक युग वह था, जब कामासक्त तुलसीदास को पत्नी ने उन्हें दोहे में ही फटकारा था और इसी एक दोहे की चोट खाकर न केवल उन्होंने दोहावली लिख मारी, वरन् अपनी रामायण-रूपी यष्टिका में चौपाइयों की प्रत्येक [illegible] के उपरान्त आठ आठ पर बाँस के लट्ठ की भाँति दोहे-रूपी तारों के ऐसे बंध लगा दिये कि चार सौ वर्षों के निरन्तर प्रयोग होने पर भी वह सुदृढ़ और सुन्दर बनी हुई है।

कालिदास का भंडाफोड़ करने के लिए ऊँट-जैसे ऊँचे पशु को मैदान में आना पड़ा था। किन्तु जब वे अकेले ऊँट ही का क्या, सभी जानवरों का सही नामोच्चारण करना सीखकर वापस घर लौटे, तो उन्होंने अपनी पत्नी के द्वारा द्वार खोलते समय 'अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः' सुनकर इन तीन पदों से प्रारंभ करके तीन काव्य-ग्रंथ लिख डाले। ऊँट की पृष्ठभूमि पर आधारित ये तीनों काव्य-ग्रंथ बड़े ऊँचे माने गये। विषाण का सर्वथा अभाव और पुच्छ की अपेक्षाकृत लघुता ऊँट को अरसिक मनुष्य के निकट लाकर खड़ा कर देते हैं। हिन्दी वर्ण-परिचय की पुस्तकों में तो उल्लू के पश्चात् इसकी छवि छापी जाती है। राजस्थानी लोक गीतों और फारस आदि देशों के साहित्य ने भी ऊँट की कीर्ति को अमर कर दिया है।

किन्तु जिस साक्षात् पशु की परिकल्पना आलोच्य श्लोक में की गयी है उसका रूप मनुष्य-जैसा होने पर भी साहित्यकारों ने उसे मनुष्य नहीं माना और पशु मानने पर भी उसके अंग-प्रत्यंगों को उपमान रूप से भी स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत उसको साक्षात् अवतार के रूप में ग्रहण किया है।

कवियों की परीक्षा

पृथ्वी-लोक की परिवर्तित परिस्थितियों से देवराज इन्द्र ने भी स्वर्ग में लाभ उठाना चाहा। ताना देते हुए उन्होंने भरी सभा में कहा कि अच्छा हुआ जो इन कवियों को स्वर्ग-लोक की प्राप्ति हुई, अन्यथा भूलोक में इनका गुजारा कठिन था। कविता के विभिन्न वाद, भाषा और विचारों की झंझट, विषयों की अनेकरूपता तथा साहित्य में राजनैतिक रंगमंच को देखकर इन बेचारे सीधे-सादे भक्त और भोले कवियों का वहाँ पर निर्वाह ही कठिन था।

इन्द्र की मनोभावनाएँ कवियों से छुप न सकीं। उनमें कानाफूसी होने लगी, जो इन्द्र दरबार की अनुशासन-मर्यादा के प्रतिकूल थी। इन कवियों में बैताल को प्रेस मार्क पाकर स्वर्ग उपलब्ध हुआ था। अतः उसे सबसे कमजोर जान इन्द्र ने फटकारा। परन्तु बैताल दबनेवाला न था। उसने इन्द्र से कहा कि जब आप हम लोगों के सम्बन्ध में कुछ मत प्रकट करते हैं, तब उस पर टीका-टिप्पणी करने का हमें सहज ही अधिकार उपलब्ध है। राजा को 'न्यायी' होना चाहिए। यही बात मैं भूलोक में भी कहता रहा हूँ कि

मरै बैल गरियार, मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै कर्कसा नार, मरै वह खसम निखट्टू॥
बाम्हन सो मर जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मर जाय जो कुल में दाग लगावै॥
अरु बेनियाव राजा मरै, नींद धड़ाधड़ सोइये।
बैताल कहै विक्रम सुनौ, एते मरे न रोइये॥

इस छप्पय को सुनते ही सभा में सन्नाटा छा गया। इन्द्र

भी सकपका गये। खांस-खकारकर उन्होंने साहस संकलित किया, और बोले—'यही बात मैं कह रहा हूँ कि आप लोग समय से पिछड़ गये हैं। देखिये इसी छंद में 'राजा' शब्द का प्रयोग हुआ है; किन्तु भारत के विधान में अब 'राजा' का स्थान नहीं। जनता का राज्य हो गया। नेता लोग अपने विचारों से उन्हें मार्ग-दर्शन कराते हैं।'

बैताल बोला—देवराज! वह तो मैंने उस युग की कविता सुनायी थी, जब कि वह परिस्थिति थी। हम लोग समय के साथ चल सकते हैं।

इन्द्र ने कहा—तो इसकी परीक्षा देनी होगी। अच्छा, मान लो कि तुम इस समय पृथ्वी-लोक में हो। अब सुनाओ अपनी कविता।

बैताल ने दो मिनट मौन धारण कर एक छप्पय गढ़ा और सुनाने लगा :

> बाबा चंचल होय, खूब माला खटकारै।
> ब्राह्मन चंचल होय, मधुर मोदक गटकारै॥
> अफसर चंचल होय, बड़े भत्ता फटकारै।
> गर्दभ चंचल होय, झूल झटपट झटकारै॥
> हैं ये चारों चंचल भले, बाबा, द्विज, अफसर खरो।
> बैताल कहै विक्रम सुनो, नेता चंचल अति बुरो॥

इन्द्र आश्चर्यचकित रह गये। सभा ने साधु-साधु की ध्वनि से स्वर्गलोक की शांति भंग कर दी। जो देवता उस समय दरबार में उपस्थित न थे, वे भी उस कोलाहल को सुनकर दौड़ आये। 'एक बार पुनः' का प्रस्ताव भी उपस्थित सदस्यों में से किसी ने कर दिया। छंद फिर पढ़ा गया।

इन्द्र का कहना रहा कि 'बैताल तो निभ सकता है; परन्तु जब सब की इसी प्रकार जांच हो जाय तब मैं अपने मत में संशोधन करूँगा।'

यह सुनते ही गिरधर कविराय के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। जीवन भर अपने को कविराय लिखनेवाले इस प्राणी को आलोचकों

ने कभी ही स्वीकार नहीं किया था। नीतिकार का एक अलग कुर्सी मान कर गिरधर जी फाइल कर दिये गये थे। बैताल के समीप ही उनका आसन था। अतः सब की निगाह उन्हीं पर केन्द्रित हो गयी। इन्द्र ने भी इशारा करते हुए कहा—कहें गिरधर कविराय।

गिरधर जी ने पहिले तो अपना नंबर टालने का प्रयत्न किया, परन्तु वे इसमें सफल न हुए। अन्त में उन्होंने कुंडलिया सुनाई :

साँई या संसार में वोटन को व्यापार।
जब लौं मेम्बर ना चुनैं तब लौं सब के यार॥
तब लौं सब के यार सबै नेता सँग डोलें।
जो तैं पायो वोट बैन मुख से नहिं बोलें॥
विनती कितनी करैं कोउ दामन को नाईं।
अब हो गयो चुनाव यार को करै गुसाँई॥

बिहारी दरबारी कवि थे। गिरधरदास के चुप होने पर उन्होंने आना-कानी करने में समय नहीं खोया और दोहों की झड़ी बाँध दी :

सादी खादी के वसन, कर नेतन की चाल।
इहि बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारी लाल॥
लालच 'वोट' बनाय कै, मोह लये हथियाय।
सौंह करैं भौंहन हँसे, दैन कहैं नट जाय॥
चरखा की माला पकरि, आन न कछू उपाव।
अब संसार पयोधि को, गाँधी टोपी नाव॥
कुरता टोपी में रहै, नकली कातत जाय।
जो पत सपनें हू बिना, अपनी राखन चाय॥
चन्दा सौंपत सेठ जी, कर नेतन सनमान।
जैसे खोटे ग्रह निमित, करत पुण्य, जप, दान॥
जब सों पद पाये नये, चले न डग दो चार।
अब नेता जी हो गये, बिना 'कार' बेकार॥

बिहारी ने अपने दोहों के धारावाहिक पाठ को समाप्त ही न किया था कि इन्द्र-सभा के अनुशासन का तनिक भी ध्यान न रखते हुए भूषण कवि गरज उठे :—

चाय जिमि भंग पर, पाउडर ज्यों अंग पर,
लिपस्टिक रंग पर, अधर उमंड है।
कैंची जिमि केश पर, फैशन ज्यों वेश पर,
बीड़ी जिमि देश पर, व्यापन प्रचंड है॥
भूषण अखंड नव खंड महिमंडल में,
स्नाइक ज्यों कान पर गाजत उदण्ड है।
छत्त जिमि टाइल पर, क्रीम जिमि आइल पर,
साहब त्यों फाइल पर, राजत अखंड है॥

किन्तु पूर्व इसके कि भूषण जी दूसरा छन्द आगे पढ़ते, श्री बृहस्पति जी ने बीच ही में कहा—बिहारी के बाद तो रहीम को अपने दोहा कहना चाहिए था। सुनकर भूषण चुप हो गये और रहीम भी संकोच में पड़ गये। दो मिनट सन्नाटा छा गया, तब इन्द्र बोले—कहिये खानखाना, क्या सोच रहे हैं। दोहा पढ़ेंगे या बरवै? रहीम ने उत्तर दिया—देवगुरु, की आज्ञा तो दोहे के लिए हुई है। दो-चार दोहे ही अर्ज कर रहा हूँ :—

सत्य-रहित हिंसा-सहित, कर्म करत अति निन्द।
कहा जान ओरें लिखें, जय गांधी जय हिन्द॥
ते रहीम नर मर चुके, जे भिक्षा कर खांय।
अब कछु ऐसे रह गये, जे चन्दा पा जांय॥
ते रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी गात्र।
औरन को हित करत हैं, लेत कमीशन मात्र॥
काज परें कछु और हैं, काज सरें कछु और।
पूरे भये चुनाव पै, मतदाता के तौर॥

रहीम भी पास हो गये।

कबीर को अपने पास-फेल की चिन्ता न थी, किन्तु जो काव्य-चर्चा छेड़ गयी थी, उससे तो उन्हें छुटकारा मिल नहीं सकता था। वे तुरन्त ही खड़े होकर कहने लगे :

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई गोन जुन्हरी बई, सो कृषि पण्डित होय॥
अपनी टर्री देख कैं, दिया कबीरा रोय।
कभी चुनी घर की तऊ, गांधी कैप न होय॥
कबिरा खड़ा बजार में, लियें माइक्रोफोन।
चले हमारे साथ जो, चहे मिनिस्टर होन॥
यह नेता तूने चुना, अब चुनि क्यों पछिताय।
बोया पेड़ बबूर का, आम कहां तें खाय॥
कबिरा इस संसार में, घना मनुस मतिहीन।
इण्टरव्यू सबसों करे, चुनैं हितू कौं चीन॥

कबीर के चुप होते ही यह मिसरा वायुमण्डल में गूंज गया—'अब दिल थाम के बैठो मेरी बारी आई।' सुनकर पद्माकर जी मुस्कराए। इन्द्रदेव ने उनसे फाग का वर्णन करने को कहा। अपनी फेंट सम्भालते हुए वे कहने लगे :

होरी की छुट्टी मनाई तहां घर सों नित जात रही है अकेली।
त्यों तहां बाबू मिल्यो पद्माकर, जो रह्यो आवत आफिस डेली।
काम कर्यो मिल के सिगर्यो फिर एक दिना कछु फाग हू खेली।
फाउण्टेन पैन उतै छिरक्यौ, इतै वाल ने लाल दवात उँड़ेली॥

* * *

खेलन आए हौ होरी भलैं, हमहू कौं गुलाल निकार तौ लैन दो।
क्रीम लगै बड़ी देर भई, मुख पाउडर पोत सुधार तौ लैन दो॥
जो बरजोरी करौ पद्माकर, तौ रुकौ सारी सँवार तौ लैन दो।
सौंह तुम्हें है हमारी अरे, लो सही, चसमा कौं उतार तौ लैन दो॥

पद्माकर के इन दो ही सवैयों को सुनकर कितने ही देवताओं का जी भूलोक पर जाने के लिए ललक उठा। इसी समय वीणा की झंकार के साथ नारद जी ने प्रवेश किया। समस्त कवि-समाज को उपस्थित देख अष्टछाप के कवियों में से जब उन्होंने परमानन्ददास जी को वहां न पाया, तब वे इस अभाव का कारण पूछने लगे। धर्मराज ने परमानन्द-दास जी का यह संदेश पढ़ सुनाया :

कहा करौं वैकुण्ठहिं जाय ?
जहँ नहिं नन्द, जहां न जसोदा, नहिं जहँ गोपी ग्वाल न गाय।
जहँ नाहि जल जमुना को निर्मल और नहीं कदमन की छांय।
'परमानन्द' प्रभु चतुर ग्वालिनी, व्रजरज तज मेरी जाय बलाय ॥

नारद ने इन्द्र से कहा—नारायण-नारायण। सुना देवराज आपने इन्द्र ने इस मत में साम्प्रदायिकता की छाप बताकर हजरत दाग से निष्पक्ष राय प्रकट करने को कहा। दिल-जले दाग तो कहने का मौका सर चाहते थे। बोले—

जिसमें लाखों बरस की हूरें हों,
ऐसी जन्नत को क्या करे कोई।

नारद जी चुपचाप खिसके। दाग की उक्ति पर इन्द्र को क्षोभ नहीं हुआ। परन्तु एक क्षण भर को ही आकर नारद जी ने जो कला खेली थी, उससे जमा हुआ वातावरण कुछ उखड़ता दिखायी दिया। किन्तु एक गन्धर्व ने तुरन्त ही स्थिति को संभालने के लिए सूरदास जी के हाथ में तानपूरा थमा दिया। मलार राग में सूर ने गाया :

उर में रचनाचोर गड़े;
सुन ऊधौ हमरी कवितन में, अपने नाम जड़े ॥
कवि-सम्मेलन बीच सुनावत गावत खड़े खड़े।
मो निरखत हूँ लाज न आई ऐसे बड़े चड़े ॥
छींटन को प्रभाव कछु नाहीं है चीकने घड़े।
सूरदास इन बटमारन को पद मिल गये बड़े ॥

संगीत की मधुर तान तथा भाव की उड़ान ने सभा को मन्त्र-मुग्ध कर दिया। सूर के मौन होते ही वाह-वाह की ध्वनि ने मण्डप को भर दिया। अब सभी की आँखें स्वभावतः तुलसी की ओर फिरीं। इन्द्र ने भी उनसे अपनी नवीनतम कृति से श्रोताओं के कर्ण पवित्र करने की प्रार्थना की।

गोस्वामी जी ने अपनी माला की आवृत्ति पूरी कर लेने पर उसे गले में पहिना। तदनन्तर वे सोरठा सुनाने लगे:

जिहि साधत सिधि होय, जन-नायक मोंपू वदन।
करहु अनुग्रह सोय, वचन राशि वँगला मदन॥
मूर्ख बनत विद्वान, जिहि के अनुमोदन करन।
जाहि स्वजन सनमान, करहु कृपा मूसक वहन॥
कोउ करै शुभ काज, ताको चस लूटन फिरत।
बसहु सो मम उर आज, कीर्ति कामना सों निरत॥
बन्दहु अवसरवाद, सुगम मनोरम अति सरल।
समयोचित सुख स्वाद, जासु उपासक सब सुलभ॥

इसके बाद उनकी चौपाइयाँ शुरू हुईं—

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। जे सब आदर के अधिकारी॥
टाइ विना ग्रीवा अति प्यारी। जिमि स्वतन्त्र भये सुधरहिं नारी॥
डी० डी० टी० अंकित गृह सोहा। पुरवासिन सबके मन मोहा।
कलि में भाषण दान पियारा। जान लेय जो जाननि हारा॥
जो जनता होवै विकसन्ती। सो प्रति वर्ष मनाय जयन्ती॥
कर्मचारि जन चार प्रकारी। करत काम निज मति अनुसारी॥
उत्तम के अस वस मन माहीं। साहब सिवा बुद्धि कहुँ नाहीं।
मध्यम देखहिं अफसर कैसे। भैंस विलोकत ऊँटहिं जैसे॥
निज करतव्य निरत जे रहहीं। ते निकृष्ट बाबू श्रुति कहहीं।
जे अनियम अन्याय प्रकासैं। अधमाधम तिन कहँ सब भासैं॥
इन पापन कर फल अवगाहीं। शुचि कैरैक्टर रोल नसाहीं।

-दोहा-

विषम रोग औषधि सरल, यह जानत सब कोय ।
प्रबल वायु जिहि दिसि बहै, मेघ गमन तिहि होय ।।

मेघों के हवा का रुख देख कर चलने की उक्ति सुनकर इन्द्र मुस्कराये । अवसरवाद की इस मार्मिक व्याख्या से सभी को आनन्द और ज्ञान का लाभ मिला । इन्द्र ने स्वीकार किया कि कवि समय के साथ चलकर भी उसे अपने विचारों के बल से उचित दिशा की ओर घुमा सकते हैं। उस दिन से स्वर्ग में कवियों को और भी अधिक सम्मान मिलने लगा और इन्द्र की गलत फहमी भी दूर हो गई । समय बहुत हो चुका था अतः सभा समाप्त हुई ।
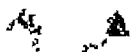
राष्ट्रपति के पीछे पीछे

कुछ बुद्धजीवी युवकों ने 'फ्री थिंकर्स क्लब' के नाम से एक संस्था बना रक्खी थी। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को बिना आर्थिक व्यय के वैध तरीकों से चाय, प्रीति-भोज, अल्पाहार आदि की सुविधाएँ प्राप्त करना था। इतने ऊँचे आदर्श को लेकर चन्दा-विहीन शायद ही कोई संस्था रही हो—यदि हो भी तो मैं सवेश तो हूँ नहीं। जो लोग 'फ्री थिंकर' नाम का अनुवाद 'मुफ्त खोर' करेंगे वे भूले हुए हैं। जितनी गलती 'वाइफ' शब्द को 'पत्नी' के रूप में अनुवाद करने वाले से होती आई है उतनी बल्कि उससे अधिक 'फ्री थिंकर' को 'मुफ्त खोर' कहने वाले की होगी क्योंकि अंग्रेजी 'वाइफ' में न जाने कितनी शादियाँ करने का अधिकार भरा है किन्तु पत्नी का आदर्श तो 'सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं' रहा है। इसी प्रकार से 'फ्री थिंकर' की विचार-धारा स्वार्थसाधन से ऊँची उठकर सार्वजनिक हितार्थ रहती है। वह अपनी जेब पर व्यर्थ का भार अवश्य ही सहन नहीं करना चाहता और ऐसे अवसर की खोज में रहता है जिसमें वह उद्देश्यों को सफल कर सके। अतएव इस क्लब के सदस्य 'ऐरे गैरे पचकल्यान' सभी को न जाने कैसे-कैसे कारणों पर 'बधाई' आदि देने में कभी नहीं चूकते। उनकी 'बधाई' आत्मीयता से भरी होती है जो 'बधाई है' के उच्चारण के साथ ही 'मिठाई खिलाओ' के मीठे शब्दों से पहिचानी जा सकती है।

परन्तु मुझे भी 'फ्री थिंकर' होने का सौभाग्य मिला है। बड़ी अच्छी संस्था है, कोई खर्च नहीं, कोई काम नहीं। मेरा तो अनुभव यह है कि जो भी पदार्थ 'फ्री थिंकर' के रूप में प्राप्त होते हैं उनमें विटेमिन तत्व पैसे डालकर खरीदी हुई वैसे ही वस्तु से कई गुने अधिक होते हैं। इस

हैसियत में की गई तीर्थ-यात्रा का पुण्य भी अधिक होता होगा क्योंकि इस प्रणाली की कला-यात्राओं के उपलक्ष में प्राप्त आनन्द सभी लोग अकथनीय कहते रहे हैं।

अभी की बात है कि एक संपादक जी मेरा फोटो प्रकाशित करना चाहते थे। मैंने बना बनाया ब्लाक ही उनके पास भेज दिया। वह ब्लाक उन्हें पसन्द नहीं आया क्योंकि वे फ्री थिंकर न थे। ब्लोक को लौटाते हुए उन्होंने लिखा कि 'आप के इस चित्र में चेहरे की स्वाभाविक प्रसन्नता नहीं है; न जाने क्यों आपने अपनी मुख मुद्रा को इतना गम्भीर बना लिया।' इससे जहाँ एक ओर सम्पादक जी के सूक्ष्म निरीक्षण से प्रसन्नता हुई वहाँ उनके द्वारा मुझ पर 'बनावटीपन के मिथ्या आरोप' पर क्षोभ हुआ। मैंने लिख भेजा कि उस समय की मेरी मुखमुद्रा बनावटी नहीं है। यदि उसमें गम्भीरता अधिक दृष्टिगोचर होती है तो यह दोष मेरा नहीं, फोटोग्राफर का है, जिसने मेरे फोटो लेने के पूर्व ही मुझे अपने बिल की रकम बता दी। साथ ही मैंने दूसरे फोटो को जो 'फ्री' बना था भेज कर पूछा कि क्या यह पसन्द है। वह क्यों पसन्द न आता। खैर यह तो हुई सिद्धान्त की बात।

हाँ, तो २८ मार्च सन् ५३ को जब माननीय राष्ट्रपति टीकमगढ़ आ रहे थे एक छोटी लारी में ३-४ सज्जन रीवा से वहाँ जा रहे थे। उसी में मेरे कुछ साहित्यिक मित्र शामिल हो गये और मुझसे भी साथ चलने का आग्रह करने लगे। पहले तो सोचा कि २६ मार्च को राष्ट्रपति का जब यहीं रीवा में आगमन होगा, तो उनके दर्शन मिल ही जायेंगे किन्तु बिना किराए को उपलब्ध' इस सवारी के आकर्षण ने मेरे उस विचार पर विजय पा ली और २७ मार्च की रात्रि में हम लोग टीकमगढ़ के लिये रवाना हुए। इस मुफ्त यात्रा का बल पाकर एक युवक पुत्र भी अपने साथ बड़ी शान से ले लिया और खाली जेब रवाना हुआ। थोड़ी ही दूर चलने पर ज्ञान होने लगा कि जिस गाड़ी से हम लोग यात्रा कर

रहे थे वह ऐसी वैसी न थी, जमाना देखे हुए थी। पुरानी गाड़ी के नये नये नखरों में रात बीतने लगी। मैं तो किसी कवि द्वारा दान में प्राप्त वयोवृद्ध घोड़े की 'विरुदावली' में कहे गये छन्द की यह पंक्तियाँ गुनगुनाने लगा :—

"सूरज के रथ लाग्यो रह्यो, बहु बार भयौ जाके आगे कन्हैया।
लाखन काग लगे फिरैं संग, बनौ फिरै काग सुसुएड कौ भैया॥"

होते चलते हम लोग २०० मील की यात्रा करने के उपरान्त २८ मार्च को दोपहर टीकमगढ़ पहुँचे। राष्ट्रपति आ चुके थे और कुण्डेश्वर के स्थान पर उनका श्रीबनारसी दास जी चतुर्वेदी आदि महानुभावों के द्वारा स्वागत किया गया था।

नगर में मकानों के द्वार आम के हरे पत्तों से बनाए गये वन्दनवारों से सुशोभित थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि प्रत्येक द्वार पर एक बरात के स्वागत की तैयारी है। दूर दूर से लोगों की भीड़ नगर में आती जा रही थी जो वहाँ के जन समुदाय को प्रतिक्षण बढ़ा रही थी। लोगों में उत्साह और आनन्द की लहरें थी। उन्मुक्त वातावरण में रंगीन दरवाजे सुन्दरता को सँवार रहे थे। किले के मैदान में एक ऊँचे मंडप पर राष्ट्रपति का आसन था। चारों ओर अट्टालिकाओं पर महिला समाज था।

शान्तिपूर्वक प्रतीक्षा करती हुई इस भारी भीड़ के बीच निश्चित समय पर राष्ट्रपति का आगमन हुआ। ओरछा नरेश महाराज वीरसिंह जू देव ने स्वागताध्यक्ष का भाषण पढ़ा। तदनन्तर महात्मा गांधी की मूर्ति का अनावरण राष्ट्रपति के करकमलों द्वारा हुआ। रात्रि में राष्ट्रपति की सेवा में लोक नृत्य का प्रदर्शन उपस्थित किया गया। बुन्देलखंड के विविध भागों और अनेकों सांस्कृतिक अवसरों पर प्रयोग में आने वाले नृत्यों तथा गीतों की शैलियों ने बड़ा ही मनोरंजक दृश्य उपस्थित किया किन्तु इन विविध गीतों और नृत्यों का परिचय देने के लिये उस समय किसी प्रकाशन या कम से कम मौखिक रूप से कथन का अभाव मुझे खटकता रहा। इसी कार्य-क्रम के बीच वहाँ की गर्ल्स स्कूल की लड़कियों

द्वारा नृत्य और संगीत के कार्यक्रम अपने स्थान पर अलग महत्व रखते थे। छोटी बालिकाओं के 'झांसी की रानी' नामक संगीतात्मक अभिनय ने तो अमिट छाप छोड़ी है।

इस प्रदर्शन के उपरान्त ही हम लोग २६ मार्च की सन्ध्या को राष्ट्रपति के रीवा में होने वाले भाषण को सुनने की इच्छा से तत्काल ही रवाना होने के लिये शीघ्रता करने लगे।

उस लारी में टीकमगढ़ नगर के भागों से पूर्ण परिचित एक महानुभाव थे, जिन्होंने अनेकों प्रार्थनाओं को अस्वीकार कर आगे के आसन को तो नहीं अपनाया था किन्तु पथ प्रदर्शन का भार ग्रहण कर लिया था। ड्राइवर उस क्षेत्र के लिये नया था और हमारे मार्ग-दर्शक जी का पथ प्रदर्शन संबन्धी निर्देश बिना संज्ञा का प्रयोग किये सर्वनाम में होता था। जिस ओर को मोटर ले जाना उन्हें अभिप्रेत होता उसी दिशा की ओर हाथ का संकेत कर वे 'इसी ओर चलो' कह कर संतोष कर लेते थे, यद्यपि बेचारा ड्राइवर उनके हाथके इशारों को देख सकने में असमर्थ था। खैर, गाड़ी रास्ते पर आ गई। मऊ रानीपुर में द्विवेदी जी आदि उतर गये। ऊँघने वालों ने पैर फैलाए। मेरे पार्श्व में एक स्थूल शरीर धारी अपरिचित सज्जन थे, जिनके ऊँघने से मेरा आलस्य कुचल जाता था। मुझे जागता बनाए रखने में उन्हीं को श्रेय है।

नयागाँव से आगे चलकर मऊ महेबा के निकट हमारी लारी रूठ गई। रात बीत गई परन्तु गाड़ी टस से मस न हुई। अन्त में ड्राइवर के संकेत पर हम लोगों ने गाड़ी चलाने के लिये श्रमदान यज्ञ भी किया। सूर्योदय के समय एक साथ सब लोगों ने उसे ढकेल कर स्टार्ट करना चाहा। परन्तु उसकी तो 'बैटरी' ही बेकार हो चुकी थी। जब वहाँ से गुजरने वाली अन्य मोटरों का सहयोग भी सफलता न दे सका तब विवश होकर हरपालपुर से रीवा चलने वाली किराए की बस से हम लोग अपनी हठीली लारी को वहीं छोड़ कर चले आये। मुझे तो दो व्यक्तियों का किराया देना पड़ा। सुन्दर बात यह रही कि हम लोग सन्ध्या साढ़े चार

बजे रीवा पहुंच गये । उसी दिन ५ बजे राष्ट्रपति का भाषण दरबार कालेज के मैदान में होना निश्चित था । मैं तो सीधा वहां पहुंचा । सभी परिचित सज्जन मेरी सूरत देखकर आनन्द मंगल का प्रश्न पूछने थे । मैं जानता था कि इसका कारण क्या है । दो रात्रि का जागरण, अनियमित भोजन, श्रमदान यज्ञ, बढ़े हुए बाल, मर्दित एवं धूल धूसरित वस्त्र और 'फ्री थिंकर' पर डबल किराए का बोझ !

सैकिण्ड क्लास का सफर

गाड़ी आने में अभी दो घंटे का विलम्ब था। तब तक शौचादि से निवृत्त हो लेना अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। सूर्यास्तका समय भी निकट था। कोट उतार कर खूंटी से टांगा। गरम जर्सी पर हाफ शर्ट पहिने हुए मुझे देख कर एक यात्री ने मेरी ओर संकेत करते हुए अपने साथी से कहा—'यह बिलकुल नवीनतम फैशन है।' उस पर ध्यान न देकर मैंने अटैची से धोती निकाल कर दुहरी लपेटी और पैण्ट तथा कमीज भी उतार कर कोट के पास टांग दिये। आवश्यक सामान लेकर मैं संलग्न बाथरूम में चला गया। तौलिया और साबुनदान रख कर वहां अपने लोटा में नल से पानी भरा और सटे हुए शौचालय में जा घुसा। अंग्रेजों के चले जाने पर भी उनकी सभ्यता के आधार स्तंभ, 'कमोड' को देख कर पहिले तो मैं भी स्तंभित रह गया, किन्तु सैकिण्ड क्लास यात्री के लिये कोई और उपाय न देख कर अपने कौशल द्वारा काम निकालने पर ही मुझे विवश होना पड़ा। अत्यंत लाघवता से मैंने अपने पंजों को कमोड के किनारों पर जमाया। 'कार्य-सिद्धि' के उपरान्त मैंने अनुभव किया कि जिस'कमोड' पर मैं तोते की तरह बैठा था उससे छुटकारा पाना सरल नहीं। उस पर से उतरने के लिये ज्यों ही मैं एक पैर उठाता कि 'कमोड' का भी एक पाया जमीन से उठने लगता। दो चार बार के इस प्रयास में विफल होकर अंत में मैं जल्दी से उछल कर नीचे कूद पड़ा। मेरी इस 'बुद्धिमत्ता' प्रभावित हो कर 'कमोड' भी मेरे चरणों पर आ गिरा। अभिषेक करने को उसमें से पानी ऊपर की ओर उछला और उसमें के उत्साही छींटे हृदयालिंगन करने के लिये जरसी की घनी ऊन में विलीन हो गये।
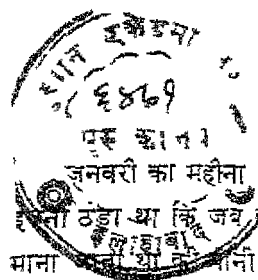
जनवरी का महीना। सर्दी अपनी जवानी पर थी। नल का पानी इतना ठंडा था कि जब कभी उसकी धारा क्षीण होने लगती तो यही माना जाता था कि पानी बीच में जम गया है।

मन में ग्लानि उत्पन्न हो गई थी। बाहरी द्वार को खोल कर मैंने 'जमादार' को आवाज दी। उसे अग्रिम 'इनाम' फेंकते हुए सफाई करने का आदेश किया। मुझे आशंका थी कि कमोड की दशा देख कर वह कुछ बड़बड़ायगा, किन्तु मेरी उस 'इनाम' ने ऐसा जादू का काम किया उसने एक बार मेरी ओर देखा और मौन की कुछ मुस्कराहट के साथ ही वह अपने काम में जुट गया। मैं भी अंदर स्नानागार में आया। हाथ पैर मटियाकर धोती बनियान और ऊनी जरसी को अच्छी तरह कांचा। स्नान करना अनिवार्य ही था। बदन पर साबुन मल कर ऊपर नल खोल दिया। गले और जबड़े में अजायबगी प्रतियोगिता चल ही रही थी। दांत भी अपनी खड़ताल से संगत करने में लगे थे। तौलिया से बदन पोंछ कर मैंने जांघिया वहीं खिसकाया और भीगी धोती लपेटे हुए अटैची के पास आया। सरदी में मेरा यह रूप देख कर अन्य यात्रियों में मेरे लिये कल्पित निष्ठा पर श्रद्धा के भाव से दिखाई दिये।

एक ने पूछा भी—'आप का यह आचार विचार इस लोक के लिये है कि परलोक के लिए?

'मैंने उत्तर दिया कि दोनों के लिये।' मेरे उत्तर से उनकी जिज्ञासा शान्त हो गई।

जल्दी से सूखा जांघिया बनियान निकाल कर मैंने पहिने। साथ की एकमात्र ऊनी जरसी तो पहिनने योग्य रही न थी, अतः ऊपर से केवल वही आधी बांह वाली कमीज पहिन कर पैण्ट कस लिया। ऐसा प्रतीत हुआ कि बिना कोट पहिने सरदी दूर न होगी।

कोट पहिन कर मैंने बाहर बेंचों पर फींचे हुये गीले वस्त्र फैला दिये। जांघिया का धोना अभी शेष था। तदर्थ मैं पुनः स्नानागार में

गया और उसे नीचे डाल ऊपर से नल खोल, कुछ पीछे को हट कर मैं खड़ा हो गया। इस समय नल के लगभग हाथ पर ऊपर लगे हुए एक सुन्दर लोहे के पहिये पर मेरी दृष्टि पड़ी। आगे बढ़कर जिज्ञासावश मैंने उसे इधर उधर घुमाया तो यकायक ऊपर से जल वृष्टि होने लगी। घबराकर उस पहिये को उलटा घुमाकर जब पुनः पूर्वस्थिति में किया तब कहीं वह वृष्टि बंद हुई। किन्तु इस प्रयोग में मेरा सूट सतीत हो गया। उसे बदलने के लिये साथ में अन्य वस्त्र तो थे नहीं। विवश होकर उसे ही पहिने रहना पड़ा। सरदी का प्रतिरोध करने के विचार से उस दिन मैंने विशेष रूप से अधिक चाय पियी। कुछ देर कंबल ओढ़ कर बैठा रहा। फिर टिकट खरीदने गया और जाकर गाड़ी आने से पूर्व ही बैंचों पर फैले हुए अपने गीले कपड़ों को समेट कर एक अलग पोटली बनाई। अटैची में लोटा तथा साबुन आदि के अतिरिक्त और कुछ न था।

स्टेशन पर चहल पहल बढ़ने लगी एक बार चाय फिर पियी। गाड़ी आई। कुली ने सामान ले जाकर सैकिण्ड क्लास के एक बिलकुल खाली डिब्बे में रखा। यहां से चल कर डाक गाड़ी मानिकपुर पर ही रुकती थी। ४८ मील की इस दूरी को तय करने में करीब सवा घंटा तो लग ही जाता था। ट्रेन के चलते ही मैंने अपना सतीत कोट पैंट डिब्बे में ही फैला दिया. और एक बर्थ पर कंबल ओढ़ कर लेट गया। तबियत को चैन भी मिला। कुछ समय बाद मैंने गाड़ी की गति में धीमापन अनुभव किया ही था कि पलभर बाद वह ठहर भी गई। उठकर मैंने बाहर को झाँका परन्तु न तो किसी स्टेशन की रोशनी ही दिखाई दी और और न कोई अन्य चिह्न ही मुझे ज्ञात हुए। हां पास वाले डिब्बे से 'उतरो उतरो' के शब्द और यात्रियों के बाहर आने का आभास मिला। घबड़ाकर मैंने भी अपने कपड़े पहिने और समान समेटकर नीचे उतर आया। सोचा कि किसी कारण प्लेटफार्म पर गाड़ी न रोकी गई हो। किन्तु मेरा कयास गलत निकला। मानिकपुर अभी काफी दूर था

पता चला कि संलग्न डिब्बे के एक पहिये की धुरें गरम हो गई थीं, और उनमें अग्नि की उत्पत्ति के आसार दिखलाई पड़ रहे थे। रेल-कर्मचारी इस रोग को "हौट एक्सिल, बताते थे। खुली हवा मुझे तीर सी चुभ रही थी। ज्यों ही मैंने अपने डिब्बे पर वापस जाने के लिए सामान उठाया तो अटैची गायब थी। इधर उधर देखने का प्रयत्न किया; अँधेरा होने के कारण सब व्यर्थ रहा। "हौट एक्सिल" वाले डिब्बे के समीप खड़े हुये गार्ड से मैंने शिकायत की तो अपनी बेदर्दी जाहिर करते हुए उसने मेरे वहां उतरने को ही दोष दिया। वाद-विवाद सब निष्फल ही रहा। गार्ड ने सीटी बजाई। पुलिन्दा और पोटली सँभाले हुए मैं अपने डिब्बे पर चढ़ गया। अटैची चले जाने में आर्थिक हानि विशेष नहीं थी किन्तु यात्रा में साधारण सी चीजों के अभाव में असुविधा तो कुछ हो ही गई। किन्तु मैंने अपना मन इस बात से समझा लिया कि कहीं अटैची हरण के स्थान पर कंबल हरण हो जाता तो जीवन मरण का प्रश्न वहीं उपस्थित था क्यों कि पहिनने के कपड़े अभी तक नहीं सूख सके थे।

मानिकपुर को निकट जान मैंने केवल कोट ही उतारा और कंबल ओढ़कर बैठा हुआ सोचने लगा कि आखिर घर से चलते समय मैंने किसका मुंह देखा था। परन्तु ऐसी कोई बात ध्यान में नहीं आती थी। चलते समय मैंने बाल औंछने में अपना ही मुँह देखा था। कह नहीं सकता कि उस दिन दिशा-सूल रहा हो। अच्छा हो यदि दिशा सूल के दिन निषिद्ध दिशाओं की ओर रेल गाड़ियों का चलना ही जनकल्याण की दृष्टि से स्थगित कर दिया जावे। ऐसे ही उदार विचारों में डूबता उतरता हुआ मैं मानिकपुर पहुँचा। यहां ओरछा जाने वाली गाड़ी खड़ी तो थी किन्तु उसके डिब्बे में प्रकाश नहीं था। फिर भी इस गाड़ी के अन्य यात्री अँधेरे डिब्बे में ही भरे जा रहे थे। जिस अंधकार को थोड़ी देर पहले अपनी ही अटैची भेंट कर चुका था उसकी अधिक सेवा करना मुझे अभीष्ट न था।

यकायक एक ऐसी सूरत मेरे सामने से निकली जिसे मैंने कभी देखा था। विस्मृति के समुद्र का अवगाहन कर चुकने पर मुझे ध्यान आया कि वह चलती गाड़ी के डिब्बों में नीलाम से माल बेचने वाला व्यक्ति था। अपनी पिछली यात्रा में मैंने इससे एक कंघा अपनी नीलाम की बोली के उपलक्ष में पुरस्कार स्वरूप प्राप्त किया था। इस बार तो मैं सैकिण्ड क्लास में यात्रा कर रहा था जिससे इन नीलाम वालों को सरोकार नहीं रहना है मुझे एक लोटा और ऊनी स्वेटर आदि की आवश्यकता थी। तदर्थ मैं उस नीलाम सेवी जन की ओर बढ़ा। सैकिण्ड-क्लास धारी होने पर भी मैं उसके पास तृतीय श्रेणी के प्रतीक्षा गृह में जा पहुँचा। पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसके पास लोटा और स्वेटर तो उपलब्ध नहीं हैं किन्तु गटा पारचा के गिलास और ऊनी मफलर नीलाम से बेचने के लिये वह रखता था। मैंने उसे बिना नीलाम किये एक गिलास और मफलर बेचने पर राजी कर लिया। पांच रुपया बारह आना में सौदा पटा। जिस प्रकार मेरी सैकिण्ड क्लास में यह यात्रा पहली बार थी उसी प्रकार जीवन में यह पहला ही मफलर मैंने लिया था। गटागम्चा के गिलास से मुझे अरुचि थी परन्तु लोटा खो जाने से यात्रा में असुविधा दिखाई देती थी। यह समस्या काफी सुलझ गई गाड़ी में बिजली जलते ही मैं उसमें जा बैठा। इलाहाबाद से आने वाली गाड़ी से एक वकील साहब उतर कर हमारे ही डिब्बे में आये। उन्हें चरखारी जाना था। महोबा स्टेशन तक हमारा उनका साथ था। कुछ देर इधर उधर की बातें हो चुकने के उपरान्त हम लोग अपनी अपनी 'बर्थ' पर सोने की तैयारी करने लगे। वकील साहब ने यह चिंता व्यक्त की कि कहीं गाड़ी के महोबा पहुँच जाने पर भी वे सोते ही न रहें। ऐसी स्थिति में मैंने उन्हें जगा देने का आश्वासन दिया। अपनी अटैची-हरण की कथा भी मैंने वकील साहब को सुनाई। किन्तु उसके लिये उन्होंने भी कोई उपाय नहीं बताया और कोई था भी तो नहीं। जब रात के ग्यारह बजे। हमारी गाड़ी भी चली। अन्दर की

चिटखनी बन्द कर बिजली बुझा हम लोग सो गए। बीच के किसी स्टेशन पर जब हमारे डिब्बे का दरवाजा बाहर से थपथपाया गया तो मेरी आंख खुली। वकील साहब भी उठे। उन्होंने दरवाजा खोला। दो यात्री आये। मैंने प्रकाश करने के लिये बिजली का स्विच दबाया, तो पंखा चलने लगा। पंखे की हवा से मेरा रोम रोम एक बार फिर थर्रा गया। मन में सोच रहा था कि अजब मुसीबत है। सरदी किस तरह लठ लेकर मेरे पीछे पड़ी है। मैं अपने बिस्तरे में घुस गया। आगन्तुक यात्रियों में एक ने दूसरे से कहा—भाई इस डिब्बे में तो जून का कलैण्डर टँगा हुआ मालूम पड़ता है। वकील साहब ने अपनी टार्च जलाई और तब पखा बद कर बिजली की बत्ती का स्विच दबाया। डिब्बे में प्रकाश हो गया। वकील साहब की घड़ी में साढ़े तीन बजे थे। उन्होंने रेलवे टाइम टेबिल की पुस्तक को खोला और प्रस्तुत स्टेशन पर गाड़ी आने के समय का मिलान करने के उपरान्त कहा—गाड़ी ठीक टाइम से चल रही है। गाड़ी के खड़ी होने पर अपनी घड़ी देख कर समय और टाइम टेबिल का मिलान करके स्टेशन का अनुमान करते जा रहे थे।

महोबा आने के पूर्व ही उन्होंने अपना बिस्तरा लपेट अपने दोनों सदूकों तथा भोजनदान एवं डोलची को सकेल कर दरवाजे के पास रख दिया। उनकी इस अधीरता को देख कर मैंने अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करते हुए कहा कि वकील साहब, आप तो मजे से उतर जाइयेगा समान मैं दे दूँगा।

कृतज्ञता के स्वर में मुझे उत्तर मिला "कभी कभी यहां कुली नहीं मिलते तो परेशानी हो जाती है। देर हो जाने पर उधर बस भर जाती है इससे कुछ तेजी करना है।"

आखिर महोबा पर गाड़ी रुकी। वकील साहब को एक एक कर मैंने सामान देना प्रारंभ किया। सौभाग्य से कुली भी उन्हें तुरंत ही मिल गया।

नमस्ते का आदान प्रदान कर मैं अपने स्थान पर बैठने के लिये लौटा। गाड़ी ने सीटी दी। अपने बिस्तरेपर एक नया मफलर पड़ा देख मैंने उसे झट उठाया और वकील साहब को संबोधित कर 'लीजिये यह किसके लिये छोड़े जा रहे हैं' कहते हुए रेल की खिड़की से उनकी ओर बाहर फेंक दिया। हाथ से छूटते ही याद आया कि वह मफलर तो मेरा ही था। परन्तु गाड़ी स्टेशन से चल चुकी थी। वकील साहब ने भी मफलर लौटाने के लिए कुछ प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ। मैं स्वयं ही अपनी बुद्धि पर विस्मित था। हमारे डिब्बे में जो यात्री और थे वे मारे हँसी के लोटपोट होने लगे। कुछ देर तक तो मैं भी उनकी हँसी में सहयोग करता रहा। किन्तु बाद को जब वे मुझे देख देख कर आपस में हँसते तो मुझे बहुत बुरा मालूम होता। अंत में मुझे उनका ध्यान इस असभ्यता की ओर आकर्षित ही करना पड़ा। इसका केवल इतना ही प्रभाव हुआ कि अन्य झूँठ मूँठ प्रसंग के बहाने उन लोगों ने हँसना प्रारंभ किया।

सूर्योदय हो चुका था। गाड़ी हरपालपुर स्टेशन पर खड़ी हुई। एक बैरा ने पूछा 'हुजूर चाय लीजियेगा।'

मैं—लेते आओ

बैरा—नाश्ता भी लाऊँ

मैं—नाश्ता में क्या चीज है?

बैरा—बिस्कुट, आमलेट जो हुक्म हो

मैं—आमलेट की क्या रेट रखी है?

बैरा—छै आना

मैं—अच्छा, लेते आना

जब तक बैरा चाय नाश्ता लेकर आया मैं मुँह धो कर तैयार था। मेरे द्वारा मँगाये गये नाश्ता से उठने वाली गंध से मुझे बड़ा क्षोभ हुआ। मैंने बैरा से कहा, 'इसमें बिना पूछे प्याज क्यों डाली है?

बैरा—हुजूर प्याज नहीं खाते, और अंडा ····

यह सुनकर मैं सन्न रह गया ।

मुझे क्या पता था कि अंडा प्याज सभी इसमें होगा ।

मैंने बैरा से कहा—यह सब वापस ले जाओ । मेरे काम का नहीं है ।

बैरा—तो हजूर सबेरे से मुझे क्यों परेशान किया ?

मैं—मैं समझा कि तुम आम की बनी हुई चीज लाने को कह रहे हो ?

बैरा—इस मौसम में यहां आम कहां मिलते सरकार ?

मैं—बहस मत करो । कितने का है यह सब चाय नाश्ता ?

बैरा—पांच और छै, ग्यारह आने का ।

मैंने ग्यारह आना देकर बैरा को विदा किया । अब हमारे उन दोनों सहयात्रियों ने इतना बुरी तरह से हँसना प्रारंभ किया कि गार्ड से उनकी शिकायत करने के सिवाय मुझे कोई दूसरा उपाय ही दिखाई नहीं पड़ता था । किन्तु न जाने उसे किसने गार्ड बना दिया था । मेरे उलाहने को और ले सुन समझ कर भी बिना उन दोनों को कुछ कहे सुने वह उल्टा मुझ से ही बोला कि अगर आप के सहयात्री आप की अभिरुचि के विरुद्ध बीड़ी सिगरेट पीते हैं तो मैं उन्हें रोक सकता हूँ किन्तु दूसरे की हँसी रोकने का मुझे अधिकार ही नहीं है ।

मैंने कहा—गार्ड साहब ! आप को पूरी गाड़ी रोकने तक का अधिकार है, फिर यह तो हँसी ही है ।

इस पर वह बोला कि यदि हंसी रोकने की शक्ति मुझमें न होती तो आप से इतनी देर बात भी न कर सकता ।

गार्ड की इस बेरुखी पर भी मुझे क्रोध आया । महात्मा गांधी भी थर्ड क्लास में ही यात्रा करते थे । यह सोच कर मैं गार्ड से निराश हो कर लौटा और अपने डिब्बे से सामान उठा कर थर्ड क्लास के एक डिब्बे में चला गया । संयोगवश इसी डिब्बे में टीकमगढ़ जाने वाले

वे सज्जन भी बैठे थे जिनका संग मैंने सतना स्टेशन पर केवल सेकिण्ड क्लास में सफर करने के कारण छोड़ा था। मुझे देख कर उन्होंने पूछा —आप सेकिण्ड क्लास से क्यों उतर आये ?

मैंनेकहा—इसलिये कि उस डिब्बे में दो असभ्य यात्री आगये।

वह—सेकिण्ड क्लास में भी असभ्य यात्री बैठते हैं ?

मैं—"क्या मुझ पर विश्वास नहीं है ?" यह कह कर मैंने अपना सेकिण्ड क्लास का टिकट निकाल कर इस आशय से दिखाया कि वे यह न समझें कि मैं सैकिण्ड क्लास में सतना से यात्रा नहीं कर रहा था।

वह—यह तो ओरछा का टिकट है।

मैं जी हां।

वह मेरा ध्यान है आप टीकमगढ़ जाने के लिये कह रहे थे।

मैं—जी हां। आप भी तो टीकमगढ़ जायँगे।

वह—जी ! लेकिन मैं तो मऊरानीपुर पर उतरूंगा। वहां से टीकमगढ़ को बस जाती है।

मैं—ओरछा से कोई बस टीकमगढ़ नहीं जाती ?

वह—जी नहीं। टीकमगढ़ जाने वाले यात्री मऊरानीपुर पर ही उतरते हैं।

मैं—तो मैं भी यहां उतर जाऊँगा। असल में यह जानकर कि टीकमगढ़ ओरछा राज्य की राजधानी थी, किसी से इस विषय में पूछा ही नहीं। मुझे सद्बुद्धि आई जो इस डिब्बे में आ गया। नहीं तो व्यर्थ ही भटकता फिरता।

बात की बात में मऊरानीपुर स्टेशन आ गया। हम लोग उतर पड़े। मुड़कर जो मैंने अपने सैकिण्ड क्लास के डिब्बे पर नजर डाली तो देखा कि वे दोनों यात्री खिड़की के बाहर मुह निकाले मेरी ही ओर झांक रहे हैं।

संदेश और साहित्य पूर्णा

अखिल ब्रह्माण्ड मूर्ख महा मंडल का मुख-पत्र 'मूर्ख सन्देश' आधी रात को प्रकाशित होने वाला विश्व का एकमात्र अनुद्रित दैनिक है। पत्रकारिता के इतिहास में यदि इसकी कड़ी तलाश की जावे तो अक्षर ज्ञान और लिपि के आविष्कार के पूर्व ही इसका सूत्रपात सिद्ध हो सकेगा, किन्तु विद्वानों की शैली पर इसका प्रकाशन केवल दो वर्ष ही पुराना है।

अपने जन्म काल ही में इसे उन अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, जो एक प्रतिष्ठा पूर्ण दैनिक के सामने आती हैं। परन्तु लक्ष्मी की सदैव ही इस पर कृपा रही। लेखकों और कवियों को उनकी रचनाओं पर पारिश्रमिक न देने के नियम से इसकी आर्थिक स्थिति में कोई गड़बड़ी पैदा नहीं हुई। हां, जो कठिनाई एक भी लेख और कविता प्राप्त न होने से हुई उसका संपादक ने बड़े धैर्य और साहस से सामना किया। जब वर्षभर लगातार प्रतीक्षा करने पर भी लेख या कविता प्राप्त नहीं हुई तो उन्होंने स्वयं ही विभिन्न नामों से विविध विषयों पर लेख लिखे और कविताएँ गढ़ी। स्वयं समस्याएं उत्पन्न कीं। उनका समर्थन एवं विरोध सभी कुछ इसी एक प्राणी को करना पड़ा। संपादक के नाम पत्र वाले स्तंभ में प्रकाशनार्थ पत्रों के लिये यह आवश्यक कर दिया गया था कि केवल वे ही पत्र प्रकाशित किये जावेंगे जिनमें 'मूर्ख-सन्देश' पत्र के लिये "लोक-प्रिय" विशेषण लिखा गया हो। इस नियम के कारण प्राप्त पत्रों में प्रकाशन योग्य एक भी स्वीकार नहीं किया जा सका।

संस्था के सदस्य भी अपने विचार इस पत्र के द्वारा प्रकट करना

चाहते थे परन्तु लेखकों ने ऐसी हठधर्मी से व्यवहार किया कि वे लिपिबद्ध न हो सके।

दैनिक पत्र होते हुए भी जब इसके ३६४ अंक पिछड़ गये तो वर्ष के सभी अंकों का एक संयुक्तांक (वर्ष १, संख्या १-३६५) निकाला गया। प्रवेशांक और नववर्षांक एवं विशेषांक सभी रूपों में इसका स्वागत हुआ, साथ ही मूर्खता के सिद्धान्तों के प्रतिपादन को बल मिला। मूर्ख-सन्देश के कार्यालय पर श्रोताओं की भीड़ दिन दूनी रात चौगुनी होने लगी। 'सन्देश' के विधान के अनुसार चार श्रोता बनाने वाले को एक बार सन्देश बिनामूल्य सुनाए जाने अथवा चार आना कमीशन देने का नियम था। अतः अनेक व्यक्ति इस के एजेण्ट बन कर अपनी जीविका उपार्जन करने की धुन में हो गये। साधारण श्रोताओं से श्रवण मूल्य चार आने प्रति अंक निर्दिष्ट था, और मंडल के सदस्यों को निःशुल्क सुनाना पड़ता था। इन कारण अनेक बार पढ़ने की खटखट से बचने के लिये आगामी अंकों के ग्रामोफोन रिकार्ड तैयार कराए जानेकी योजना इस वर्ष स्वीकृत हुई है। यदि वह कार्यान्वित हुई तो इससे पत्रकारिता के इतिहास में एक नया मार्ग प्रशस्त होगा। न तो डाक विभाग से रजिस्टर्ड होने की आवश्कता ही रह जायेगी और न संपादक के गले में खराश होने पर ध्वनि परिवर्तन के कारण ग्राहकों को किसी प्रकार की असुविधा ही रहेगी।

वर्तमान अन्य समाचार पत्र यद्यपि अपने प्रातः सायं एवं डाक आदि विभिन्न संस्करण प्रकाशित करते हैं, किन्तु उसमें उनका आर्थिक दृष्टिकोण ही अधिक रहता है। प्रस्तुत पत्र का उद्देश्य अँगरेजी तारीख के प्रारंभ होते ही पत्र का प्रकाशन है। विश्व की महानतम घटनाओं का भी यही समय है। इससे सद्य समाचार की प्रतिष्ठा होती है। अमुद्रित होने के कारण इसमें प्रेस की भूलों को भी कोई स्थान नहीं रह जाता। इससे एक ओर जहां यह अपने लिये पूर्ण रूप से विकसित परिधि का

विस्तृत क्षेत्र बनाये हुए है वहां मुद्रित समाचार पत्रों के अन्य दोषों से मुक्त है।

विज्ञापन सम्बन्धी नीति इस पत्र की अपनी नई है। शिक्षा विभाग के विज्ञापन तो इसमें प्रकाशित होते ही नहीं है। किन्तु अन्य पत्रों में यदि कोई भी विज्ञापन मूर्ख मंडल के उद्देश्यों का समर्थन करता हुआ दिखाई देता है तो वह इस पत्र में निःशुल्क प्रकाशित कर दिया जाता है। इससे प्रकट होगा कि विज्ञापनों के द्वारा भी आर्थिक लाभ का उद्देश्य न होकर अपनी नीति के प्रचार की भावना ही इस पत्र में भरी है।

इसके कार्यालय की समस्त योजना अपूर्व और अद्वितीय है। इसमें फायलिंग के लिये "डहरी सिस्टम" एवं टाइपिंग में 'कबीर प्रणाली' का परिचय प्राप्त कर लेने से कामर्स के विद्यार्थियों को लाभ हो सकता है।

अभी तक फायलिंग में जो प्रणालियां प्रचारित हैं, उनमें वर्टिकल फाइल (अर्थात् खड़ी पत्रावली), फ्लैट फाइल (अर्थात् पड़ी पत्रावली) एवं अन्य सीमावार तथा अक्षरानुक्रमानुसार फाइलों की योजना बताई गई है। किन्तु इन सब में यह एक महान दोष है कि प्रस्तावित पत्र का संग्रथन करने में बहुत समय चला जाता है। यह मानी हुई बात है कि जितने पत्र फाइल में संग्रहीत होंगे भविष्य में उन सभी की आवश्यकता नहीं पड़ सकती अतः मूर्ख महामंडल के कार्यालय में 'डहरी सिस्टम' को अपनाया गया। इसमें फाइल निर्माण में खर्च होने वाले धन और समय दोनों बचाये गये हैं।

ग्रीष्मऋतु में व्यवहार से उतरी हुई मिट्टी की एक पुरानी डहरी दफ्तर के एक कोने में रख दी गई है। समस्त संकलनीय पत्र इसमें ठूँस दिये जाते हैं। और आवश्यकता के समय उसमें से ढूँढ़ निकाले जाते हैं। इसमें अन्य प्रणालियों की अपेक्षा एक बड़ा लाभ यह भी है कि यह पहले से ही निश्चित रहता है कि वांछित पत्र एक ही जगह है। डहरी के स्थान पर कनिस्टर का प्रयोग भी किया जा सकता है।

इसी प्रकार टाइपराइटिंग में भी 'टच सिस्टम' के सीखने में शिक्षार्थी का समय एवं धन और मशीन के अकारण उपयोग में जो राष्ट्रीय हानि होती है वह बचा ली गई है। 'साइट सिस्टम' में होनेवाले दोनों हाथों के प्रयोग से मशीन पर समान भाव का दबाव नहीं पड़ पाता और टाइप कर्ता से भी पूर्व के कुछ अनुभव और ज्ञान की अपेक्षा की जाती है। इन दोनों बातों से मंडल का स्वाभाविक विरोध होने के कारण 'कबीर प्रणाली' का उपयोग यहां स्वीकार किया गया है, जिसमें 'जिन खोजा तिन पाइयां' के कथनानुसार जिस अक्षर को टाइप करना अभिप्रेत हो उसे सावधानी के साथ ढूंढ लिया जाता है और दाहिने हाथ की केवल पर तर्जनी के प्रहार से उसे टाइप कर दिया जाता है। मैंने इस प्रणाली का स्वभाविक उपयोग करने में कई विद्वानों तक को इतना सफल पाया है कि उन्होंने पहली बार ही अपना पूरा नाम टाइप कर किर लिया, जो अन्य प्रणालियों से उनके लिये असंभव था

इन बातों से प्रकट होगा कि संदेश कार्यालय किसी के अनुकरण पर स्थापित नहीं है वरन् मौलिकता का प्रचार और प्रसार करना ही उसका उद्देश्य है।

'संदेश' कार्यालय में सार्वजनिक सेवा की जो एक नई शाखा अभी हाल ही खोली गई है उसको परिचित कराना भी आवश्यक है। आपको यह विदित है कि कवि और विद्वानों से जनता को समुचित लाभ नहीं पहुँच रहा है। कितने ही व्यक्तियों को जब अपनी प्रशंसा की आवश्यकता पड़ती है तो कवि और लेखक मुँह से तो कुछ नहीं कहते परन्तु उनकी मनोभावना बहुत ऊँचे दाम चार्ज करने की रहती है। विवाहों में शिष्टाचार के कवित्त, जन्म समय की बधाइयां, विजयोत्सवों के गीत एवं ऐसे ही अन्य अन्य अवसरों पर चाहे जाने वाली कविताओं की रचना के लिये कोई सुलभ साधन नहीं। जनता की परेशानी को दूर करने के लिए 'मूर्ख-सन्देश' कार्यालय में साहित्य-मूर्छा नाम से एक विशेष कक्षा की स्थापना की गई है।

इसमें बुद्धि जीवी मूर्ख और श्रमजीवी विद्वान भरती किये जावेंगे, जो ग्राहक की मांग के अनुसार काव्य रचना करेंगे। सभी वर्गों के हितों का ध्यान रख कर ऐसी साधारण 'दर' स्थिर की गई है जिससे सभी लाभ उठा सकें।

विभिन्न प्रचलित छन्दों की रचना दरें निम्नांकित हैं :—

दोहा, सोरठा—तीन रुपया।
चौपाई— चार रुपया।
रोला— छै रुपया।
गीतिका— साढ़े छै रुपया।
हरिगीतिका— सात रुपया।
सवैया— आठ रुपया।
कुंडलिया— नौ रुपया।
छप्पय— साढ़े नौ रुपया।
कवित्त— ग्यारह रुपया दस आना।

नोट :—१ अतुकान्त कविता बनाने में २५ प्रतिशत कम किया जायगा।

२. वैशाख और जेष्ठ के महीनों में 'लेबर' सस्ता हो जाने के कारण ग्राहकों को भी उस समय कविता बनवाने पर साढ़े बारह प्रतिशत कमीशन दिया जा सकेगा।

३. गद्य लेखन का कार्य स्वीकार नहीं किया जावेगा।

४. पद्य निर्माण हो जाने पर ग्राहक को उसे स्वीकार करना होगा। उसके निरर्थक होने या भाव को व्यक्त न कर सकने आदि किसी कारण से यदि वह अस्वीकार किया जायगा तो भी ग्राहक पूरे मूल्य का देनदार होगा।

५. रचनाएँ केवल हिन्दी भाषा में होंगी और देवनागरी लिपि में लिखी जावेंगी।

हमारे साहित्य प्रेमी बंधु उपर्युक्त सूची को पढ़ कर स्वयं ही निश्चय कर लेंगे कि यह दरें कितनी सस्ती हैं। कहते हैं महाकवि भूषण को एक

ही कविता पर ५२ गांव तथा ५२ लाख रुपया महाराज शिवा जी ने दिए थे जब कि 'साहित्य पूर्णा' में कवित्त की रेट केवल ग्यारह रुपया दस आना मात्र ही रक्खी गई है। महाकवि बिहारी लाल की सतसई के प्रत्येक दोहे पर उस सस्ते समय में भी एक स्वर्ण मुद्रा मिली थी जब कि इस मंहगे समय में हमने तीन रुपया मात्र दोहा का दाम रक्खा है। यह किसी से छुपा नहीं है कि यदि आप की (सच्ची या झूठी ही: कैसी ही सही) कीर्ति का कोई काव्य रचजायगा तो आप अमर हो जावेंगे। आशा है आप इस अवसर को हाथ से न जाने देंगे।

मुझे जीव मात्र से यह भी निवेदन करना है कि वे अपने बेकार समय का 'साहित्य पूर्णा' के द्वारा उपयोग में लावें। उन्हें ग्राहक भी ढूंढ कर लाना होगा। हमारा विचार कविता कला का 'कोटेज इण्डस्ट्री' के रूप में विकास करने का है। इस गृह उद्योग से न केवल कलाकारों की आर्थिक स्थिति ही सुधरेगी वरन् भारतवर्ष का साहित्य भी अधिकाधिक स्थूल होता जायगा।

टोर्च की ज्वाला

सावन की अंधेरी रात में मुजस्सिम खां और सैनिवेश के साथ एक उत्सव से लौट रहा था कि मार्ग ही में सड़क की बिजली एक साथ लुप्त हो गई यानी आधी रात बीत जाने की अधिकृत सूचना मिली। शेष रात्रि सड़क पर म्युनिसिपैलिटी की ओर से प्रकाश की व्यवस्था न थी। संस्था को सभी वर्गों का हित देखना पड़ता है।

खैर, मैं तो इस घटना के लिये पहले से ही तैयार था। जेब से टार्च निकाल कर मैंने बटन दबाया। किन्तु जब वह प्रकाशित नहीं हुई तो मैंने उसके मोहरे को बाहर निकाल कर बल्ब को घुमाकर कुछ ही कसा था कि यकायक वह ज्योतिपूर्ण हो गई। बटन ढीला करने पर ज्यों ही वह बुझी कि मुजस्सिम खां साहब घबरा के बोले—पंडित जी जरा ठहरिए।

मैं चौंका कि बात क्या है। ठहर गया। मुजस्सिम खां ने मेरे भौतिक स्थिरता की आलोचना करते हुए कहा:—बैटरी बन्द न कीजिये, मैं बीड़ी सुलगाना चाहता हूँ। माचिस खत्म हो गई है।"

मैं किसी प्रकार अपने को काबू में रख कर 'सुलगाओ' इतना उच्चारण कर सका। धीरे धीरे सड़क पर अंधेरे में बढ़ता हुआ मैं अपने मनोविकारों का किस प्रकार दमन करता रहा यह मैं ही जानता हूँ। उन साधनों में उस समय टोर्च का न जलना भी एक था।

मुजस्सिम खां इस बीच अपने कोट के अन्दर वाली जेब से बीड़ी निकालने की तेजी कर रहे थे। मरकट मूंठ की भांति उनका अब—गुण्ठित हाथ जेब की संकुचित मोहरी से सत्याग्रह कर अत्यन्त अहिंसात्मक प्रणाली से सफलता पूर्वक बाहर आ गयी। यद्यपि इसमें भी काफी समय लगा किन्तु मैं तो केवल इतना कर पाया कि टार्च को मैंने बाएं से दाएं हाथ में ले लिया और मुहरा को दाएं से बाएं में।

बंडल से बीड़ी निकालते हुए मुजस्सिम खां को संबोधित कर सैनिकेश जी ने कहा—"खां साहब, एक बीड़ी इधर भी।"

"वल्लाह हाजिर है, मैं तो खुद ही पेश कर रहा हूँ"—कहते हुए मुजस्सिम खां ने एक बीड़ी सैनिकेश जी को भेंट की, और दूसरी को अपने हाथ में सीधी करते हुए मुझसे कहा, "हूँ पंडित जी।" इस "हूँ" में कितना अर्थ भरा था इसे आप भी समझते होंगे। मैंने तुरन्त टार्च का बटन दबाया। तीखा प्रकाश हुआ। चकाचौंध में उन्मीलित नयनों की कोर से देखते हुए मुजस्सिम खां ने टार्च की तरफ अपना बीड़ी वाला हाथ और मुँह बढ़ाया। मैंने भी टार्च को कुछ ऊंचा उठाया। आखिर प्रकाशित बल्ब पर बीड़ी को रख कर मुंह से उन्होंने ऐसे जोरदार सरूंटा मारे कि यदि बल्ब के स्थान पर कहीं अग्नि की चिनगारी होती तो दावानल और जठरानल का सम्मेलन भी हो गया होता। उन्होंने आठ या बारह कश मारे थे इतना भर मुझे केवल इस कारण याद है कि उनके दो या तीन "राउण्डों" में प्रति तीन अल्प-कालिक कुम्भकों के पश्चात् एक दीर्घ कुंभक होता था। जब मैं स्काउट था तो इस प्रकार की सीटी बजा कर पैट्रोल लीडर को बुलाने का संकेत मुझे सिखाया गया था।

खेद है कि बीड़ी न जली। उन्होंने एक बार और असफल प्रयास किया। किन्तु पूर्व इसके कि मैं अपनी टार्च को इस अकर्मण्यता के लिये लाञ्छन देता, मुजस्सिम खां ने उदार भाव से यह स्वीकार किया कि "बीड़ियों में सील बैठ गई है।" हमारे पैर हमें ठीक रास्ते पर अपने आप चल रहे थे, वरना दिल और दिमाग तो न जाने किस जगह थे। गंभीर मुद्रा में मुझे कहना पड़ा कि आखिर बरसात का असर कहीं तक न होगा।

सैनिकेश जी ने अपने ज्ञान के प्रकाश में इस समय टीन के बने हुये बीड़ीकेसों की सिफारिश की और मार्ग में थोड़ी ही दूर पर मिलने वाली एक हलवाई की दूकान पर उसकी भट्टी में रात के दो-दो बजे

तक अग्नि के अवशिष्ट पाये जाने की ज्ञानभरी सूचना दी। खां साहब ने उपेक्षाभाव से कहा कि इन दिनों आग भी "कंजया" जाती है। इस उत्तर से मुझे भी एक नई प्रेरणा मिली। मैंने कहा—हो सकता है कि टार्च की लौ भी कंजया गई हो। मुजस्सिम खां ने इस संभावना पर विजय पाने की इच्छा से कहा 'जरा फिर से तो जलाइयेगा।'

टोर्च पुनः जलने लगी। उसका ऊपर का मोहरा पूर्ववत अलग था। खाँ साहब ने इस बार बीड़ी को मुंह में नहीं दबाया बल्कि हाथ में लेकर उसमे वे बल्ब के ऊपर की कल्पित राख झाड़ने लगे। इस प्रक्रिया में उनकी उंगली बल्ब में छू गई।

विस्मय के स्वर में वे बोलपड़े—इस पर तो कांच चढ़ा है!

मैंने कहा—और आप क्या समझते थे?

मुजस्सिम खाँ - तब इसमे बीड़ी कैसे जल सकती है?

वास्तव में मुझे इन सब बातों ने तो खां साहब की ज्ञान गरिमा पर तरस आ रहा था। उत्सुकता और विनोद के वश में होकर मुझे चुपचाप नाटकीय ढंग से उनको सहयोग देना पड़ रहा था। किन्तु जब उलटा उन्होंने ही मुझसे यह प्रश्न कर दिया तो मुझे यह कह कर कि "मैं तो बीड़ी पीता नहीं, मैं क्या जानू टार्च से बीड़ी जल सकती है या नहीं" अपने उस सहयोग की रक्षा करनी पड़ी। साथ ही मैंने सेनिकेश जी से कहा कि आप तो बीड़ी पीने वाले हैं, आपने क्यों नहीं बताया जो इतने समय से व्यर्थ ही मैं भी परेशान हो रहा हूँ।

सेनिकेश जी से कुछ कहते न बन पड़ा। वे केवल इतना प्रकट कर सके कि उस दिन के पूर्व कभी उन्होंने इसकी परीक्षा नहीं की थी कि टार्च से बीड़ी जल सकेगी या नहीं।

पाठक हमारे इन दोनों साथियों का परिचय जानने को उत्सुक होंगे जहां तक स्मरण शक्ति काम देती है कोई १५-२० वर्ष पूर्व मुजस्सिम खां को मैंने सबसे पहले जंगल मे एक पहाड़ी पर बैठे हुए चार पांच अन्य

व्यक्तियों के बीच में उछल-उछल कर शेर पढ़ते हुए देखा था। मैं भी उनके किनारे से गुजरा। १-१ मिनट खड़े हो खड़े तब मैंने समझ लिया था कि यहा उर्दू में अन्ताक्षरी प्रतियोगिता चल रही है, जिसमे समस्त उपस्थिति के विपक्ष मे खां साहब ही अकेले मोर्चा ले रहे हैं। उनके दो चार माह बाद ही एक मुशायरे में मैंने उन्हें उसी उछलकूद के साथ 'बन्दा दाद तलब है' कह कह कर गजल पढ़ते हुए सुना। मैं गरिष्ठ उर्दू का पाचन नही कर पाता था अतः दाद की ध्वनि की विकरालता के अनुसार शायर की छोटाई बड़ाई नापता था। धीरे धीरे जब मैं मुशायरों में अधिक जाने लगा तो मुझे अपने मन्तव्य मे संशोधन कर देना पड़ा। 'शायरी और 'दाद' मे अन्योन्याश्रित संबन्ध स्थापित करना मैंने बन्द कर दिया। मशायरों में मेरी बहुधा उपस्थिति और दाद मे इमदाद करना देखकर खां साहब भी मुझे उन गिने चुने समझदारों में मानने लगे जो उनकी दृष्टि मे 'शायरी की रूह' को पहिचानते थे।

उर्दू में जो स्थान मुअस्सिम खां साहब को प्राप्त था था वही हिन्दी में सनकेश जी रखते थे। कवि-सम्मेलन और मुशायरों के आयोजन हमारे यहां बहुधा सम्मिलित रूप में हुआ करते थे। इससे हिन्दी में तो दाद प्रियता बढ़ी किन्तु उर्दू पर क्या प्रभाव पड़ा यह मैं नहीं भाप पाया।

क्या करूँ ?

क्या करूं आज कल साहित्य की मांग भी बढ़ रही है परन्तु नये साहित्य की रचना के लिए पर्याप्त समय ही नहीं मिलता । 'ग्रो मोर फूड' के आंदोलन से देश विदेशी अनाज की आवश्यकता भले ही मिटा चुका हो परन्तु 'ग्रो मोर लिटरेचर' जैसी किसी योजना के अभाव में कवि और लेखकों को राजकीय सहायता न मिलने से हम साहित्य में अब भी परमुखापेक्षी बने हुये हैं । साहित्य में स्वदेशी आन्दोलन अभी भी होना बाकी है । क्या करूं इस आंदोलन को उठाऊँ ? परन्तु चलेगा या नहीं कह नहीं सकता । रचनात्मक कार्य का प्रारंभ करने के लिए इसी गणेश चौथ को मैंने श्री वेदव्यास जी के 'पुराण प्रसिद्ध स्टेनोग्राफर की पूजा तनोयोग, मनोयोग, और धनायोग से की । फल-स्वरूप नगर के सभी हलवाइयों से मेरी जान पहिचान हो गई और घर में चीटों का प्रवास भी प्रारम्भ हो गया । कुछ दिनों में घर में चूहों की आबादी भी बढ़ती हुई जान पड़ी जिससे मुझे 'वक्रतुण्ड महाकाय लम्बोदर गजानन' की कृपा का भी अनुभव होने लगा । भावों का ऐसा जोरदार प्रवाह आने लगा कि कलम को दावात में बोरने से नष्ट होने वाला समय भी मुझे अखरने लगा । फाउण्टेनपेन से भी वह उलझन क्षणिक दूर हुई क्योंकि उसकी स्याही चुक जाने पर पुनः भरने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता था । अतः मैंने फाउण्टेन पेन का सिरा काट कर उसे एनीमा वाले इर्रीगेटर की नली में फिट कर लिया है । अब सेर भर स्याही एक साथ उसमें भर जाती है और लिखने में जो विघ्न अभी तक पड़ते रहे हैं वे 'सर्व विघ्नोपशान्तये' के प्रभाव से एक साथ ही विलीन हो गये । अपने इस नव निर्मित 'इर्रीगेटर-पैन' के द्वारा अब मुझे ...

साहित्य में ही उथल पुथल मचाना है। नये नये 'वाद' निर्विवाद रूप से स्थिर कर देना है। सभी दलों और वर्गों के लिये बिना निजी दृष्टिकोण के रचनात्मक साहित्य सृजन करना है जिससे वचनात्मक और नचनात्मक दोनों प्रकार की कलाओं को सहायता मिल सके।

पूर्व इसके कि मैं लिखने का कोई नया काम हाथ में लूँ उपयोगिता की दृष्टि से मुझे अपनी अधूरी रचनाओं को पूरा करना उचित प्रतीत होता है।

इस वर्ष मेरे पास एक शिष्ट मंडल ऐसे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करा ले गया कि मैं गांधी जयंती के दिन हाथ के कते और हाथ के बुने वस्त्र ही धारण करूँगा। उस प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करने में मेरा आधा घंटा बर्बाद हुआ। आप यह न समझ बैठें कि मैं इतना कुपढ़ हूँ जो आध घंटे में केवल हस्ताक्षर ही कर पाया वरन् बात यह हुई कि हस्ताक्षर करने के लिये भी मैंने अपने हाथ की बनी हुई कलम का उपयोग ही श्रेयकर समझा अतः चिर काल से बिछुड़ी हुई उस कलम की खोज करने में ही कुछ समय लग गया। क्या करूँ?

अभी एक अज्ञात कवि का परिचय लिखने जा रहा था। एतदर्थ उनकी कृतियों से परिचय प्राप्त करने के हेतु मैं उनके वर्तमान वंशज के घर पहुँचा। देखने में वे पूरे पंडित और विचारों में अविवाहित कालिदास से कम न थे। मैंने जब उनके पूर्वज की कृतियों में से अपने प्रस्तावित लेख में उद्धृत करने के हेतु उत्कृष्ट उदाहरण चुन लेने की बात कही तो उन्होंने जो उत्तर दिया उसे भी सुन लीजिये। वे बोले कि जब छाँट छाँट कर अच्छी अच्छी कविताएँ उसमें से आप अपने लेख के उद्धरण में प्रकाशित कर देंगे तो फिर अप्रकाशित ग्रंथ में महत्व ही क्या रह जायगा? इस तर्क का उत्तर मैं आजतक सोच रहा हूँ। उन वंशधर के तर्क में जो चिरस्मरणीय बात रही वह है उनके गांधीवाद का ज्ञान! आत्मीयता से प्रेरित होकर उन्होंने हस्त लिखित ग्रंथों को छपे हुए ग्रंथों से उसी प्रकार श्रेष्ठ और पवित्र बताया जिस प्रकार खादी का मिल-निर्मित

स्त्रों की अपेक्षा गौरव मिला है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथा में दीमक लगने पर वे स्वायत्त 'अहिंसा' धर्म का भी पालन करते होंगे। गरज़ यह कि मैं उनके तर्कों का निराकरण कर सका और न मुझे उन अज्ञात कवि महानुभाव की रचनाओं के उदाहरण ही मिल सके इस कारण, शोध कार्य मुझे बन्द ही कर देना पड़ा।

अब मुझे यथाशीघ्र चुनाव गीतावली की रचना पूरी कर देना है। पिछले चुनावों में प्रत्येक राजनैतिक दल एवं व्यक्ति को ऐसे गीतों का अभाव खटकता रहा, जिनके गायन का वोटरों पर अनुकूल प्रभाव पड़ सकता। अतः साहित्य के इस नये अंग की पूर्ति करने का मैंने बीड़ा उठाया है और देश की समस्त राजनैतिक संस्थाओं के लिये चुनाव गीतावली में एक एक अध्याय रखने की योजना बनाई है। प्रत्येक अध्याय में चार चार पद तो संबंधित राजनैतिक संस्था के उद्देश्य की पवित्रता एवं प्रशंसा में लिखे जा रहे हैं और शेष पदों में अन्य सभी संस्थाओं और व्यक्ति के अपयश का गान होगा। यह कार्य इतने निर्लिप्त भाव से चल रहा है कि रचयिता पर पक्षपात का दोष किसी भी संस्था की ओर से नहीं दिया जा सकता क्यों कि सभी संस्थाओं को प्रशंसा और अपयश यथा स्थान एक ही ग्रंथ में समाविष्ट आप को मिलेंगे। आशा ही नहीं वरन् पूरा पूरा विश्वास है कि इस पुस्तक की बिक्री से ही रचयिता मालामाल हो जायगा और फिर उसे अन्य पुस्तकों के लिखने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। आगामी चुनाव में जो व्यक्ति भाग लेना चाहें उनकी कीर्ति और उनकी ओर से अन्य व्यक्तियों पर आक्षेप युक्त रचनाओं को परिशिष्ट के रूप में दिये जाने का भी विचार है।

बीच बीच में मेरा लोक गीतों का कार्य चलता ही जायगा। मैं पुराने लोकगीतों का संग्रह नहीं करता हूँ, वरन् नये लोक गीत तैयार करता हूँ। परन्तु साहित्यिकों का उचित सम्मान न होने से वह जनता में प्रचलित नहीं हो सके हैं। अतः इनका एक संग्रह 'अछूते एवं अप्रचलित लोकगीत' के नाम से प्रेस में दे दिया गया है। 'चना जो

धरम' के नाम से एक लटका संग्रह किसी प्रसिद्ध संयुक्त लेखक की तलाश में लटका हुआ है।

किन्तु मुझे जो परेशानी है वह है समयाभाव। वैसे तो भगवान ने मुझे भी २४ घण्टों वाला दिन दिया है, परन्तु हमारे विभाग के अफसर साहब भी 'मंदकवि यश. प्रार्थी' संप्रदाय में दीक्षित हो गये हैं। अतः दिन रात कलम घिसने के बाद भी मुझे लेखक के स्थान पर उनका ही नाम डाल देना होता है। इस कारण मेरी प्रगति कुछ धीमी मालूम होती है। मैंने यह कार्य इस लिये प्रारंभ किया था कि मेरे तथा अन्य साहित्यकों के प्रति उनकी आदर भावना बढ़ेगी, किन्तु फल उलटा ही निकला। उन्होंने अन्य प्रसिद्ध लेखकों और कवियों के संबन्ध में भी यह धारणा बनाली है कि उनके नाम से प्रचलित कृतियां भी उनके लिये किसी अन्य व्यक्ति की लिखी हैं। वह अन्य व्यक्ति कौन है—इसका पता वे दे नहीं पाते। मैं भी बड़े असमंजस में हूँ कि—क्या करूँ?

रायदानी लाल बुझक्कड़ और उनके वंशधर

'ब्यालोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' की प्रचलित कल्पना को सफल चुनौती देने वाले स्वतन्त्र विचारक एवं 'कौमन सैन्स' के उन्मूलक अखाड़ों के गौरव तथा आशु कवि लालबुझक्कड़ के नाम से ऐसा कौन व्यक्ति है जो परिचित न हो ; किन्तु उनके जीवन के संबंध में अभी तक कुछ भी पता नहीं है। इस विषय को अभी तक इतना जटिल माना गया है कि किसी भी शोध-विद्यार्थी ने अपनी थीसिस के लिये इसे चुनना पसन्द नहीं किया। फलतः विश्वविद्यालयों ने इस सम्बन्ध में मौन धारण करना ही उचित समझा। लोक-साहित्य पर कुछ न कुछ लिखने के आधुनिक फैशन के प्रभाव से नहीं वरन् एक अमर किन्तु अपेक्षित साधक के संबंध में चर्चा चलाने के उद्देश्य से यह पंक्तियां लिख रहा हूँ।

अनेक महाकवियों की भांति लाल बुझक्कड़ जी के काव्य से भी उनके जीवन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। बाह्य साक्ष्य भी उनके लिए सुलभ नहीं है। ऐसी कठिन परिस्थितियों में हमें उनके जीवन की खोज राजकीय नियमों तथा अन्य शास्त्रीय सिद्धान्तों और लोक परंपराओं एवं भाषा विज्ञान के बल पर करना है।

लाल बुझक्कड़ जी के संबंध में एक महत्वपूर्ण भ्रांति यह है कि वह कल्पित पुरुष थे। इसका निराकरण करने के लिये मुझे केवल इतना कहना काफी है कि जब जन-जन के मुख से इस लोक कवि के दोहे—सुनाई देते हैं तो उसे कल्पित कैसे माना जाय। यदि वह कल्पित होता तो उसके नाम से प्रचलित दोहों की छाप तस्कर वादी कवियों ने कभी की बदल डाली होती। क्योंकि जो जीवित कवि तक की कविता हड़प करने के बाद डकार नहीं लेते, उनके पेट में अस्तित्वहीन कवि

की रचना पर अपना 'ट्रेडमार्क' छापने में क्या कोई दर्द होता था ! आशा है, पाठक हमारी इस एक ही दलील से संतुष्ट हैं, अतः मैं उनका अधिक समय न लूंगा ।

लाल बुझक्कड़ जी के जन्म के सन्-संवत् का ज्ञान न होने पर भी सेण्ट्रल गवर्नमेण्ट के जैनरल फाइनेन्शिल नियम की धारा ११७ के अनुसार उनका जन्म दिवस १ जुलाई को प्रति वर्ष मनाया जा सकता है संवत् का निर्णय कर लेने से कोई और अधिक लाभ तो है नहीं। औसत के सिद्धान्त पर भारत के केन्द्र दरयावपुर को इनका जन्मस्थान भी मान लेना चाहिए ।

लाल बुझक्कड़ जी ने काव्य-रचना दोहा छंद में की है । उनके मत्री दोहों के प्रथम दो चरण ओज और विश्वास के भाव से परिपूर्ण एवं स्थायी हैं । ब्रज, बुन्देली एवं अवधी आदि भाषाओं का लोन करने वाली अभिव्यंजना से पूर्ण इतनी शक्तिशाली इनकी भाषा है कि वह वशिष्ट दो चरणों अर्थात् आधे दोहा में ही पूरे से अधिक भाव को व्यक्त करने में सफल रही है । इन भाषाओं के गौरव-काल में सतसई-कार महाकवि बिहारी ने इसलिये अधिक प्रसिद्धि पाई थी कि वे दोहा— जैसे छोटे छंद में भी बड़े से बड़ा भाव भर देने में कुशल थे । इसी स्पर्धा से कदाचित लाल बुझक्कड़ जी ने आधे ही दोहा में पूरा क्या दूना भाव भर देने की ठानी होगी । इससे प्रकट होता है कि यह महाकवि बिहारी के समकालीन अथवा निकट परवर्ती थे ।

रीति-काल के युगीन प्रभाव से तनिक भी आक्रान्त न होकर इन्होंने आजीवन 'रायदान-यज्ञ' किया और अपनी अपूर्व सूझ के बल पर अपने को अमर कर डाला ।

आश्चर्य नहीं कि अपने निर्माण के समय इन्होंने ब्रह्मा जी से सींग और पूँछ की भी याचना की हो, किन्तु पूर्व जन्म के संस्कार—वश ब्रह्मा जी इन्हें मनुष्य योनि में ही भेजने के लिये विवश रहे । यों तो एक

मनुष्य के भी सींग पूँछ लगा देना ब्रह्मा जी को कठिन न था किन्तु इस प्रकार के शिशुओं का जन्म होने पर जो समाचार अखबारों में छपते उनका उत्तर देने के लिये ही शायद उन्हें चार मुखों की आवश्यकता पड़ी होगी। खैर, तो सींग पूँछ के आग्रह के बहलावमें ब्रह्मा जी ने इन्हें 'अतिसर्वत्र वर्जयेत्' की ऋचा परध्यान देते हुये भी चर्चा हुई बुद्धि कीएक और अतिरिक्त 'यूनिट' देकर ऐसे कुल में इनको जन्म दिया जहां इनकी व्यक्तिवाचक संज्ञा में सींग लगाया जाना संभव था। परन्तु ब्रह्मा जी से चिढ़ कर जन्म से ही हठी होने के कारण लालबुझक्कड़ जी ने सींग का नाम को भी स्पर्श नहीं होने दिया। अनुमानतः इसीसे उन्होंने शृङ्ग (सींग) से संबंधित होने के कारण शृङ्गार (शृङ्ग + ऋ) रस का एक भी दोहा नहीं कहा। पूँछ तो इनकी सदा ही रही थी। बौद्धिकता की दृष्टि से विचार करने पर इनका जन्म स्थान भोगाँव या शिकारपुर के आसपास होने की सम्भावना थी। किन्तु भाषा शास्त्री इस मत का अनुमोदन नहीं करते। नाम में परुपावृत्ति का बाहुल्य देखकर कुछ लोग इन्हें दक्षिण भारत का अनुमान करते है। इस मत को मैं नितान्त भ्रमपूर्ण मानता हूं क्यों कि एक तो नाम के आदि में लाल शब्द के अभिन्न मोह से यह विन्ध्य प्रदेश या ब्रज के ही ठहरते है। और दूसरे इनके काव्य से सिद्ध होता है कि यह उस प्रान्त के थे जहां के ग्रामों में हाथी सुलभ नहीं होते। एक बार जब रात में उनके गांव से एक हाथी निकल गया और प्रातः उसके पदचिन्हों को पृथ्वी पर देखकर ग्राम वासी भयभीत हुए तब इन्होंने कहा था कि पृथ्वी पर के पदचिन्ह केवल इस बात के द्योतक हैं कि रात्रि में हरिन अपने पैरों में चक्की बांध कर कूदा है और इसीके वह निशान हैं। उनके इस विचार को यहां उनकी कविता से उद्धृत किया जाता है —

लालबुझक्कड़ बुझके और न बुझे कोय।
पाँवन चक्की बांधके हिरन कुदक्का होय॥

कल्पना की उड़ान भी उसी हिरन के पैर से बँधी प्रतीत होती है

एक समय एक किसान एक खेत की बारी लगाता हुआ उसी के अन्दर स्वयं घिर गया। उसे बाहर निकालने का उपाय जब हमारे इन बुद्धि चेम्पियन से पूछा गया तो इन्होंने तुरन्त बताया था कि :—

लालबुझक्कड़ बुझ के और न बुझै कोय।
पाँवन रस्सी बांधके ऐंचातानी होय॥

अर्थात् बारी के अन्दर घिरे हुए किसान के पैरों में रस्सी बांध कर बाहर से खींचने पर वह निकल आयेगा। आज वकील भी ऐसी राय देते हैं परन्तु बिना पैसा लिये नहीं। लोभ को त्याग कर निःशुल्क रायदान यज्ञ के द्वारा ही तो इन्हें प्रतिष्ठा मिली थी। यदि इनके समय में कोई चुनाव होता तो निश्चित ही वे अपने क्षेत्र से निर्विरोध सदस्य घोषित हो जाते इसमें कोई आश्चर्य न था। यह निश्चित है कि इनके द्वारा ऐसी ऐसी नई योजनाएँ निकलतीं कि विश्व दङ्ग रह जाता।

अत्यन्त वृद्धावस्था में बौद्धिक अजीर्ण रोग से इनकी मृत्यु आश्विन बदी ६ को हुई मानी जा सकती है। क्योंकि जिनकी निधन तिथि का पता नहीं होता, उनका श्राद्ध दिवस शास्त्रों में यही माना गया है।

लालबुझक्कड़ जी के वंशधर श्री भुलक्कड़ सिंह जी से एक भेंट में मैंने लाल साहब के द्वारा पुराने कुआँ में कमल का फूल देख कर कहे गये दोहे में एक अश्लील शब्द के प्रयोग होने पर आपत्ति प्रकट की थी। श्री भुलक्कड़ सिंह जी ने बताया कि लाल बुझक्कड साहब का दृष्टिकोण इतना व्यापक था कि वे शब्दों में श्लील और अश्लील का भेद भाव नहीं करते थे, और न नर और पशु में ही कोई अन्तर देखते थे। अपने मत की पुष्टिमें उन्होंने 'बिरकोन' शायर का उल्लेख करते हुए यह बताया कि बीभत्स रस में लालबुझक्कड जी का यह दोहा अपनी सानी नहीं रखता :-

लाल बुझक्कड बुझ कैं, और न बुझै कोय।
गडडम गडडाई करौ, सब पंचन की होय॥

स्थान संकोच के कारण इस प्रसिद्ध दोहे का संदर्भ और अर्थ प्रकट

नहीं किया जा रहा है।

श्री भुलक्कड़ सिंह आजकल वर्ग-पहेलियां निकालने का व्यवसाय करते हैं। रायदान तो उनकी बपौती है। कई आकर्षक एवं ठोस योजनाएं भी उनके पास हैं। चर्चा में जो दो चार बातें हाथ लगी हैं उन्हें मैं प्रकट किये दे रहा हूँ :—

१—भुलक्कड़ सिंह जी का विचार है कि जिस प्रकार परिगणित अथवा पिछड़ी हुई जातियों के लिये विविध सेवाओं और संस्थाओं में स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं उसी भांति लेदर ट्रेनिङ्ग स्कूलों अथवा उन अन्य शिक्षाओं में जिनको वर्णाश्रम के अनुसार परिगणित अथवा पिछड़ी जातियों का ही अधिकार था सवर्णों के लिये स्थान सुरक्षित किये जावें। इससे व्यवसाय के कारण उत्पन्न भेद बुद्धि का नाश होगा।

२—सरकार को चाहिये कि गवैयों और भाषण कर्ताओं को रात में बोलने का लाइसेन्स दे जिसमें सरसता तथा उपयोगिता के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को रात्रि के अलग अलग समय तक कला प्रदर्शन करने की अनुमति रहे। इससे मुहल्ले वालों की निद्रा में हानि नहीं होगी और कला का मूल्यांकन भी साथ ही हो जायगा।

३—जिस प्रकार नर और नारी का जोड़ा है उसी प्रकार नल और नाली का भी। नल न होने से नाली साफ नहीं हो सकती और नाली न होने से नल के पानी से बीमारी उत्पन्न हो सकती है। इससे नल और नाली को एक दूसरे का पूरक स्वीकार किया जाय। पान और पानी में इस प्रकार का संबंध होने की क्षमता पर भी विद्वान विचार कर सकते हैं।

४—बुद्धि जीवी व्यक्तियों को श्रमदान यज्ञ में भाग लेते हुए यदि कभी पसीना आ जावे तो उसे एक शीशी में एकत्रित कर लेबिल लगाकर प्रदर्शिनी में सुरक्षित रक्खा जावे। आलस्य ग्रसित व्यक्तियों को उसका अनिवार्य इंजैक्शन लगाने की योजना पर अखिल ब्रह्माण्ड मैडिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट विचार करे, तो संभव है इसके सदुपयोग का कोई तरीका निकल आवे।

चाय का चस्का

चुनाव की चपलचोत्कारों के बीच एक साहब मुझसे पूछ ही बैठे कि मुझे किस पार्टी से विशेष प्रेम है।

निष्कपट भाव से मैंने कहा—टी पार्टी से

वे झुँझलाकर बोले—मेरा मतलब है कि किस राजनैतिक पार्टी में आप की दिलचस्पी है।

मैं भाँप गया कि अभी इन्हें यह भी पता नहीं कि 'टी पार्टी' भारत की क्या विश्व की सबसे बड़ी राजनैतिक संस्था है। इसमें सरकारी कर्मचारी भी भाग ले सकते है, किन्तु व्यर्थ की मगज़- पच्ची से बचने के लिए मैंने कहदिया कि 'तो फिर किसी भी पार्टी से नहीं।'

अरे, वे तो गले पड़ गये, बोलेः—ऐसा हो ही नहीं सकता कि आप की रुचि किसी भी पार्टी में न हो।

मैंने कहाः—आप के लिये जो असंभव रहा है मैंने वह संभव कर दिखाया—यों मानिये।

पर उन्हें भी क्यों स्वीकार होने लगा। फलतः अनिर्णीत स्थिति में हम लोग एक दूसरे से विदा हुए।

लौटता हुआ मैं टी पार्टी के प्रति अपने प्रेम का समय और परिस्थितियों पर विचार करता हुआ बढ़ रहा था। मस्तिष्क तो व्यस्त था किन्तु पैर अपने आप घर की ओर सुप्त चालक की बैलगाड़ी की भांति बढ़ते चल रहे थे।

एक बार रात्रि के समय मोटर से यात्रा करते हुए मैंने देखा था कि ८-१० बैल-गाड़ियां सड़क पर आगे आगे चल रहीं थीं और उन पर बैठे हुए गाड़ी वाले सो रहे थे। ऐसे सो रहे थे कि मोटर की हार्न-ध्वनि उन्हें जगाने में असफल रही। हमारे ड्राइवर को मोटर रोकना पड़ा। वह झुँझलाकर उतरा और उसने उन जुते हुए बैलों की नाथ पकड़ कर उन्हें

चुपचाप विपरीत दिशा की ओर घुमा दिया । बैल फिर बीच सड़क पर मंथर गति से पूर्ववत चलने लगे। किन्तु गाड़ी आगे बढ़ने की अपेक्षा अब तो पीछे को लौटी जा रही थी। हां, तो मैं विचार मग्न अपने चाय प्रेम के इतिहास की मन ही मन शोध करता हुआ आगे बढ़ रहा था कि एक सोता हुआ कुत्ता पैर से टकराया। भयभीत बचता हुआ मैंने कुत्ता को अंग्रेजी में एक ही व्यापक शब्द द्वारा फटकारा "डैम" और साथ ही मुझे उसकी वाणी में सुनने को मिला "टई"। मेरी जानकारी में अबतक "श्वान" शब्दावली का कोई कोष छपा हुआ न होने के कारण मैं आज तक अनिश्चित हूँ कि उसने मुझे क्या कहा था। अनुमान तो यह है कि "श्वानी" भाषा में 'टई" अंग्रेजी के "डैम" शब्द का पर्यायवाची होगा। यदि मेरा अनुमान सही है, तो पाठक ही निर्णय करें कि मुझ जैसे विचारशील पुरुष को मार्ग में बेक़ायदा सोते हुए कुत्ते को आखिर "टई" कहने का क्या अधिकार था।

किन्तु कानून के अनुसार "शक का फायदा मुलज़िम" को देकर मैंने उसे बरी कर दिया। यदि वह चाय पीता होता तो इस प्रकार की निद्रा का शिकार न होता। एक बार जब एक बैल ने मुझे देख कर आईज़राइट करते हुए अपने बड़े बड़े सींगों को ऊँचा किया था तो मैंने भी उसकी इस क्रिया को अपने लिये "गार्ड आफ़ आनर" मानकर दूर ही से उसकी अभिवंदना इसलिए की थी कि गोस्वामी जी लिख गये हैं कि—

संत हंस गुण गहहिं पय परिहरि बारि विकार ।।

हां, तो चाय से मेरा अधरालिंगन कब से हुआ इसे जानने के लिये आप उत्सुक होंगे। वे दिन मुझे अच्छी तरह याद हैं कि जब ग्रामोफोन का प्रचार हुए अधिक समय न बीता था और उनसे संगीत सुनाकर जनता को एकत्रित कर सोमरस की परंपरा में उद्‌भूत चाय की संस्थापना करने वाले उदारता पूर्वक चाय पिलाया करते थे। उन प्रचारकों

में कोई कवि होता तो उसे चाय को 'सोम' का अवतार होने की कल्पना किये बिना चैन न पड़ता और संभवामि युगे युगे की टीका करने में उसकी लेखनी ने अच्छा चमत्कार दिखाया होता । उस समय इन चाय प्रचारकों की ओर से जो पोस्टर लगाये गये थे उनमें एक ही पर तुकान्तता दृष्टि-गोचर हुई थी । चाय काव्य की परम्परा का संभवतः यही प्रथम श्लोक है:—

वह और उसका भाय ।
पीता है हमेशा चाय ॥

हां, तो उन प्रचारकों से मैं भी चाय की कथा सुनता और प्रसाद वितरण में चाय पीता अवश्य, किन्तु मिट्टी के कुल्हड़ में, क्यों कि उस समय मुझे चीनी के प्यालों से वह अनुराग नहीं था जिसके वशीभूत होकर अपने कविता काल के आरम्भ में ही 'नीके हैं' समस्या की पूर्ति में यह कवित्त मुझ से लिख गया था :—

चमक को देख चारु चांदीहू चमक जात
दमक ते अङ्ग दुकि जात दामिनी के हैं ।
जिन बिन छिन भर चलत न एको काम
तामें पीतलादि पात्र पड़े सब फीके हैं ॥
कहैं "वासुदेव" माननीय मित्र मण्डली मे
पूरन पसन्द सब भांति भये जी के हैं ॥
लगें लंप नीके कप्प नीके पम्प नीके,
बनें कौन कम्पनीके नीके प्याले ये चीनी के हैं ॥

बिना पैसे की चाय पीने में किसी भी अर्थशास्त्री को हानि नहीं प्रकट होगी ।

अब भी मेरे पास अपने उस संगीत प्रेम पर अभिमान बाकी है कि जिसपर रीझ करमृग भी तन देते रहे हैं । यदि मैंने उस के लिये चाय के प्रति आत्म-समर्पण किया तो इसमें औरङ्गजेब की नजरों में भले ही मूर्खता हुई हो परन्तु 'रहीम' की दृष्टि में 'पशु' से अधिक नहीं हो पाया । एक

चाय का चस्का

समय वह था जब चाय मिलाने के लिये 'बलात्मक' (अर्थात् मशीन द्वारा) संगीत आकर्षण के रूप में प्रयुक्त होता था और १० २० वर्षों में ही 'दिनन के फेर सों भयौ है हेर फेर ऐसो' कि संगीत गोष्ठियों में श्रोताओं को एकत्रित करने के लिये ही कई बार चाय की व्यवस्था करनी पड़ती है। इसे कहते हैं समय का परिवर्तन।

सभ्यता के विकास काल में हमारे यहां जाड़ों में चाय उस दिन बनती थी जब सर्दी अधिक पड़ती। 'ब्रुक बौंड चायं भव सोम पानम्' का मन्त्र पढ़ कर चाय छानी जाने लगी। भंगेड़ियों का 'शम्भू कैलाश के राजा' भंग पिये तो आजा' का शंखनाद करते हुए सभी ने सुना होगा किन्तु रसिक शिरोमणि नंदनदन को चाय समर्पण करने का यह मधुर मंत्र वैदिक रीति से हमारे ही यहां पढ़ा जाता था :—

गोकुल के लाला औ बरसाने के जीजा।
गोरस तौ भौत पियौ गरम चाय पीजा॥

इस प्रकार श्री कृष्णार्पण करके चायपान का श्रीगणेश हुआ।

सुना है एक बार किसी ने महात्मा गान्धी से चाय के संबंध में जब उनकी सम्मति जानना चाही थी तो उन्हें उत्तर मिला था कि चाय में तीन वस्तुएं निस्संदेह अच्छी हैं। एक दूध दूसरी पानी और और तीसरी शकर। अब पाठक ही विचार करलें कि जहां चार में से तीन तो निर्विवाद रूपेण लाभदायक हों और चौथी के विरोध में कोई बात भी न कही गई हो, वहां हानि की संभावना ही क्या? इस चार पदार्थों के प्रति मैं मोहित हो गया और निष्काम भाव से जी भर कर चाय पीने लगा। एक सज्जन जब जब मेरे पास आये और उन्होंने मुझे चाय पीते ही पाया, तो विस्मित होकर अँग्रेजी में उन्होंने मुझसे पूछा कि आप दिन भर में कितने कप चाय पी जाते हैं।

मैंने उत्तर दिया 'सिक्सटी कप्स'।

उन्हें विश्वास न उतरा। जिरह करने लगे एक बार में कितने।

मैंने कहा-दो।

वह-कितने समय का अंतर देकर।

मैं—"लगभग छः घंटे का"।

वह—तब तो एक दिन में आपका 'सिक्सटी कप्स' पीना असंभव है।

मैंने उन्हें बताया कि वे भ्रम में हैं। मेरा अभिप्राय चाय के छः प्याले से है, नकि साठ से।

इस भ्रम में पड़ जाने का दोष मैं उन्हें न दूँगा। श्रमजीवियों में मुझे श्रमजीवी माना जाता है। बुद्धिजीवियों में मैं अशुद्धिजीवी हूँ। भ्रम और अशुद्धि का निवारण ही मेरा पेशा है। अतएव भ्रम उत्पन्न करना भी कभी कभी मेरे लिये आवश्यक हो जाता है।

परलोक की सैर

धर्मराज के कार्यालय की जरा सी असावधानी के कारण हमारे बड़े बाबू का जो कष्ट हुआ था उसकी कथा सुनने से यह सिद्ध होता है कि गलती केवल इन्सान ही से नहीं होती है। मैं तो उनकी परलोक यात्रा के संस्मरण सुनते सुनते सहानुभूति प्रकट करने में भी अनुभवी हो गया हूँ और यही कारण है कि इधर उधर की बात को खींच तान कर वे उस प्रसंग को लाकर बहुधा उसी समय खड़ा करते हैं जब मैं भी वहां उपस्थित होता हूँ। क्यों कि मेरे सिवाय और कोई उनको उस दशा के साथ इतना अधिक साम्य स्थापित नहीं कर पाता। मैं उनके तत्संबंधी प्रत्येक कथन को हितैषी गवाह के हलफिया बयान के बराबर मानता हूं। मेरे चेहरे पर अपने प्रति अटूट विश्वास की मुद्रा को देख कर बाबू जी भी परोक्ष में मेरे भला आदमी होने का जोरदार प्रचार करने लगे हैं। मेरी उनके प्रति की गई सेवा का यही पुरस्कार मुझे मिला है। बात केवल इतनी है कि मैं उनके इस कथन का जोरदार समर्थन कर देता हूँ कि उन्हें अपनी आयु का निश्चित ज्ञान है। यद्यपि मैंने उनके उस ज्ञान के बल पर उन्हें अनुकूल जीवन बीमा करा लेने की भी कई बार शिफारिश की, किन्तु न जाने क्यों वे इस बात पर राजी नहीं हुए।

कोई मुझ से यह न पूंछ बैठे कि आखिर उनकी वह निश्चित निधन तिथि है क्या? मुझे स्वयं उसका पता नहीं है। बड़े बाबू किसी को उसे प्रकट नहीं करते। वे केवल अपने संबंध में एक 'घटना' का बखान किया करते हैं कि ६-७ साल पहले एकबार वे जब असाध्य बीमार हुए थे तो इस संसार ही को छोड़ कर चल बसे थे। पृथ्वी से जाते हुए मार्ग में यमदूतों ने उन को बड़ा कष्ट पहुंचाया। थोड़ी ही देर में उन दूतों ने उन्हें देवलोक के किसी अधिकारी के सामने उपस्थित कर दिया। बड़े बाबू

यह तो अभी तक निश्चित रूप से नहीं कह सके कि वह अधिकारी कौन था, किन्तु अपने अनुमान से वे उसे यमराज मानते हैं। गोरा शरीर, लम्बा कद, खुली हुई आंखें, सफेद और लम्बी दाढ़ी, सुन्दर चेहरा और सफेद वस्त्र तथा मस्तक पर एक जड़ाऊ मुकुट, इतना ही रूप वर्णन वे उस दिव्य विभूति का कर पाते हैं। उनकी 'ओपीनियन' (सम्मति) में वर्तमान यमराज भी बड़ा भला है। बड़े बाबू के पहुँचते ही उसने इनका नाम पूछा किन्तु डर के मारे ये बोल ही न सके थे। इनकी ओर से उत्तर एक यमदूत ने ही दिया, जिसे सुनकर उस दिव्य विभूति ने एक बड़ा रजिस्टर खोला। उस में लिखे हुए विषय पर बाबूजी ने न देखते हुए जैसी दृष्टि बना कर अपना सारा "रिकार्ड" देख लिया। यमराज ने पूछा कि अपने जीवन में सबसे बड़ा परोपकार का कार्य आपने कौन सा किया है। बाबू जी ने कहा कि दफ्तर की उलझनों ने किसी अन्य कार्य करने को मुझे जब फुरसत ही नहीं रहती तो मैं अधिक क्या कर सकता था? फिर भी अपने छोटे साहब के घर का बाजार संबंधी सारा काम मैं ही करता था। उसके लिये मैंने कभी भी प्रतिदान की कामना नहीं की। यही मेरी जन-सेवा है। तुरन्त ही यमदूत ने बात काटते हुए कहा कि फिर पाप करने के लिये समय कहां से निकल आता था? बाबूजी बिगड़ पड़े और यमदूत से अपनी व्यक्तिगत रंजिश बताते हुए उसके इस मिथ्यारोपण से इन्कार करने लगे।

यमराज ने इतनी बात को सुना और गुना। वे घबराकर अपने दूतों को असावधानी के लिए फटकारने लगे और इनके नाम के सामने मृत्यु तिथि के खाने पर अपनी उंगली से संकेत करते हुए बोले कि इस व्यक्ति का जीवन तो यहां तक है। दूतों ने उस तारीख पर दृष्टि डाली। बाबू जी ने भी उसे देख लिया। यमदूत आदर के साथ इन्हें भूलोक पर वापस लाये। लौटते हुए मार्ग में उन्होंने अपनी इस भूल के लिये क्षमा याचना में न जाने क्या क्या कहा किन्तु बाबू जी ने उसे सुना ही

नहीं, क्योंकि उस समय तो वे अपनी मृत्यु तिथि को घाकत आ रहे थे।

घर पर उन्हें रोने पीटने का अशान्तिकारी कोलाहल सुनाई देने लगा। उनकी देह ने आंखें खोल लीं करवट बदली, रोने वाले चुप हुए। इन्होंने मांगा—"कागज, कलम।"

किसी समीपस्थ ने उत्तर दिया—पानी पियोगे ?

बाबू जी— कागज, कलम।

इसे सुन कर पास वालों ने बेहोशी और सन्निपात का प्रभाव मानकर वैद्य बुलाने का आदेश दिया। बाबू जी यह सब कुछ सुन रहे थे। अपनी मृत्यु तिथि को मन ही मन धाकते हुए उन्होंने अबकी बार कुछ जोर से कहा-"कागज कलम लाओ।

सब लोगों ने आपस में कहा कि "दफ्तर की याद आ रही है"। बाबू जी को गुस्सा आया वे चीख पड़े-"अरे मूर्खो मैं होश में हूं। मेरी डायरी उठा दो और कलम ला दो।"

आखिर बात मान ली गई डायरी और कलम मिलते ही उन्होंने उठने का प्रयास किया और बैठ गये। डायरी के अन्त में याददाश्त वाले पन्ने पर उन्होंने कुछ नोट किया जो आज तक किसी को नहीं मालूम है। उसी समय बाबू जी की नाम राशि वाले एक अन्य व्यक्ति का पड़ोस में यकायक हार्टफेल हो गया और हृदय की गति अवरुद्ध होने से उसकी मृत्यु हो गई।

यह है बड़े बाबू की परलोक यात्रा की कथा जिसे मैंने उन्हीं के मुँह से सुना था। उनके व्यक्तित्व का परिचय देते समय नवागन्तुक को मैं उसे सुनाया करता हूँ। बड़े बाबू को अपनी इस कथा पर अभिमान है। जब पहली बार उन्होंने यह कथा मुझे सुनाई थी तो मैंने उनका थोड़ा सा "विरोध" भी किया था—कथा का नहीं, बल्कि उनके इस कथन मात्र का कि "यह अपूर्व घटना है"।

मुझे याद है मैंने उत्तर दिया था कि किसी अन्य के लिए भले ही य घटना अपूर्व हो परन्तु मेरे सामने तो यह इस प्रकार का दूसरा उदाहरण है। मैंने बताया कि मेरे पड़ोस के एक कुम्हार की ८१ वर्ष की अवस्था में एक रात्रि को मृत्यु हो गयी थी। दिन होने की प्रतीक्षा में उसका शव रक्खा था कि वह सवेरा होते होते पुनः जी उठा और तब से १० वर्ष तो बीत गये हैं वह बुड्ढा स्वस्थ है। मैंने बाबू जी से इस बात पर विशेष जोर दिया कि उसने भी यमराज की यही हुलिया बताई थी जो आपने कही है, किन्तु उसके लिये यमराजने रजिस्टर नहीं खोला था वरन् वहां पर जलते हुए असंख्य दीपका में से एक की ओर संकेत करते हुए उन्होंने यमदूतों को फटकारा कि—'देखो इसका दीप तो अभी बुझा नहीं फिर इसे क्यों ले आये ?

उस वृद्ध कुम्हार ने भी अपने जीवन-दीप को जलते हुये देखा। उसमें तेल की मात्रा अपेक्षाकृत बहुत कम थी। उसे एक युक्ति सूझ गई। रोकते रोकते उसने समीपस्थ किसी दूसरे दीपक से अपने वाले दीपक के घट में तेल डाल दिया। हड़बड़ाहट में इस व्यतिक्रम का तो वहां सुधार न हुआ, किन्तु यमदूत उसे पुनः पृथ्वी पर भेज गये। सबेरा होते ही उसकी मृत देह ऐसे उठ बैठी जैसे कोई गहरी निद्रा से जगा हो। पहले से भी अच्छा उसका स्वास्थ्य बन गया।

मेरे इस तथा कथित विरोध ने बाबू जी की दृष्टि में मुझे और भी ऊंचा उठा दिया। वे उस कुम्हार की प्रत्युत्पन्न मति की सराहना करते हैं किन्तु मेरी नहीं। फिर भी अपने प्रति मेरा अंधविश्वास जान कर वे मुझे मानते बहुत हैं।

—:o:o:—

छींक–विज्ञान

वेदान्त की भांति छींक शास्त्र भी कम उलझा हुआ नहीं है। सगुण और निगुर्ण के सम्बन्ध में जितना विवेचन वेदान्त-वादियों ने किया है उससे कहीं अधिक 'सगुन' और 'असगुन' पर विचार छींक शास्त्रियों ने किया है। किन्तु इसके साहित्य को लिपिबद्ध होने की सुविधा ही नहीं दी गई, इस कारण ग्रंथ रूप में यह उपलब्ध नहीं है। अस्तु।

अपनी एक यात्रा के लिये मैं तांगा लाने के लिये ज्यों ही घर से निकला था कि किसी ने सामने ही दे छींका। पैर एक दम रुक गये। मन ने कहा कि समय थोड़ा है, जल्दी चलो नहीं तो गाड़ी चूकने का अन्देशा है। मैं रुका नहीं, परन्तु तांगा स्टैण्ड पर एक भी तांगा न था, फलतः मुझे प्रतीक्षा में वहीं ठहरे रहना पड़ा और एक तांगे के वहां आते ही मैं जल्दी से चालक की आर्थिक मांग को यथावत् स्वीकार कर उसमें बैठ गया। तांगे वाले ने गाड़ी मिला देने का आश्वासन देते हुए 'दम' लगाने भर के लिये दो मिनट के समय की याचना की। उस प्रार्थना के स्वीकार करने का तो मुझे अधिकार था परन्तु अस्वीकार करने की क्षमता सम्भवतः मुझे प्राप्त न थी। अतः मेरी मौन स्वीकृति के साथ ही इमामी चिलम तैयार करने में लग गया। जेब से एक साफी निकाल और 'जिसने न पियी गांजे की कली, उस लड़के से लड़की ही भली' का नारा लगाते हुए उसने मुझे लज्जित सा किया। फिर तीन चार छोटे छोटे कुम्भकों के अनन्तर एक बड़ा सरूंटा उसने मारा, और उपेक्षित भाव से चिलम को एक अन्य साथी की ओर बढ़ाते हुए उसने घोड़े के नथुने को अपनी हथेली से बन्द कर दूसरे नथुने से अपना मुंह सटा कर उसमें सारा धुआं फूंक दिया। मैंने जिज्ञासा वश पूछा– 'यह क्या ?'

उत्तर मिला—"चिलम चकरी। सास की नाक बहू ने पकरी।"

मेरे समझ में यह पहेली न आई। खैर, यह मैं जान गया कि इमामी का घोड़ा भी दमबाज था। इससे अधिक ज्ञान मुझे चाहिये भी न था। इमामी के सवार होते ही बात की बात में तांगा मेरे घर पर आ खड़ा हुआ। मैंने उतर कर अन्दर से सामान भिजवाया और चलने के लिए ज्यों ही तांगे के पायदान पर पैर रखा कि छींक हुई। अबकी बार इस छींक के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये मैं पाँच मिनट के लिये रुक गया—अपने मन से नहीं बल्कि दादी के कहने से।

खैर, जब मैं रवाना हुआ तो गाड़ी मिलने की आशा और निराशा के पुलिनों में मेरा मन तैर रहा था। घोड़ा हवा से बातें करता हुआ बढ़ रहा था, इमामी अपनी कर्कश वाणी से प्रेम भरे शब्दों के द्वारा घोड़े को प्रोत्साहित करता हुआ इकड़ा जा रहा था। स्टेशन पर मुझे गाड़ी खड़ी दिखाई तो दी किन्तु उस तक मेरे पहुंचने के पूर्व ही वह रवाना हो गई। खेद के स्वर में इमामी ने कहा—"अगर हुजूर छींक मनाने के लिये न रुके होते तो गाड़ी न चूकती।" मैं भी यही सोच रहा था, किन्तु घर से चलते समय उस छींक का मैं उल्लंघन न कर सका था।

मैंने "छींक-विज्ञान" नामक एक ग्रंथ लिखने का संकल्प उसी समय कर लिया। घर वापस आकर मैं अध्ययन के लिये सामग्री जुटाने लगा और अपने स्वतन्त्र विचारों तथा अनुभवों को लिपि बद्ध करने में व्यस्त रहने लगा।

सबसे प्रथम छींक की उद्गम स्थली नासिका का बड़ी बारीकी से विश्लेषण किया गया। प्रसंग वश यह भी जानना आवश्यक हो गया कि नासिका-अपहरण का कार्य कब से प्रारंभ हुआ था। इस सम्बन्ध में प्राप्त सबसे प्राचीन उल्लेख है रामायणकाल में लक्ष्मण जी द्वारा सूर्पणखा का 'नासिकोपाख्यान'। यहां पर यह प्रश्न भी

उपस्थित हो गया कि क्या उक्त सूझ लक्ष्मण जी की मौलिक थी अथवा उनसे पूर्व भी सूर्पणखा की भांति कामासक्ताओं के प्रति इस प्रकार का व्यवहार करने की परंपरा रही है? जब तक इस संबन्ध में कोई और प्राचीन प्रमाण नहीं मिलता, "नासिकोन्मूलन" के आदि प्रवर्तक श्री लक्ष्मण जी ही माने जायेंगे, किन्तु खेद है कि महर्षि वाल्मीकि जी ने इस प्रसंग पर काम माहिता सूर्पणखा के प्रति अपनी वह सहानुभूति व्यक्त नहीं की जो उन्होंने एक क्रौञ्च पक्षी के लिये प्रकट की थी।

उत्पत्ति की दृष्टि से छींक का वर्गीकरण इस प्रकार होना चाहिये :

१ स्वाभाविक २ प्रेरित।

स्वाभाविक छींक को पुनः दो उपभेदों में विभक्त किया जा सकता है :—

(क) शुद्ध ख) जुकामोद्भूत।

इसी प्रकार प्रेरित छींक को भी तीन विभेदों में बांटना होगा :—

(क) औपचारिक; अर्थात् तम्बाकू आदि के उपचार से आने वाली छींक।

(ख) यान्त्रिक; अर्थात् सींक या बत्ती के नासिका प्रवेश के उपलक्ष में प्राप्त छींक।

(ग) रश्मि-रंजित; अर्थात् सूर्य की किरणों को नासिका रंध्र एवं अर्द्धोन्मीलित नेत्रों में अनुरंजन करने पर स्वायत्त छींक।

'सगुन वाद' अर्थात् शकुन-विचार की दृष्टि से वर्ग १ (क) के अन्तर्गत 'शुद्ध स्वाभाविक छींक' का ही अधिक महत्व है।

लेखक की हैसियत से अपने अनुभव लिखने के लिये मुझे सूक्ष्म निरीक्षण की आवश्यकता हुई। व्यावहारिक प्रयोग (प्रैक्टिकल एक्सपैरीमेंट) के लिये मैं प्रस्तुत था! अपने कोट की जेब में खाने के लिये काजू,

बादाम, किशमिश आदि भरकर मैं साइकिल लिये बाहर जाने के लिये खड़ा हो गया। केवल प्रतीक्षा थी—एक छींक की।

मेरे इस अभियान से चिन्तित होकर कुछ हितैषी समझाते, 'भैय्या छींकते चलने की हठ क्यों करते हो?' कोई इस जनश्रुति को दुहराता--छींकत खइये, छींकत पिइये, छींकत पर घर कबऊँ न जइये।" अपने शुभचिन्तकों की इन सब बातों को मैं धैर्यपूर्वक सुनता रहा। मैंने उन्हें बताया कि प्रस्तुत कार्य किसी हठ के कारण नहीं किया जा रहा है वरन् मेरा ध्येय अपने जीवन को एक खतरे मे डाल कर देश को नया अनुभव प्रदान करना है। विदेशों में तो लोगो ने अनुभव ग्रहण करने मे अपने प्राण तक लगा दिये हैं। क्या हम लोकहित के लिये थोड़ा सा भी त्याग नही कर सकते?

इस प्रकार के मेरे कथन ने हितैपियों को चुप रहने पर विवश कर दिया। मैंने देखा कि अब वे मेरे अभियान में सहायक भी होना चाहते थे, क्योंकि जब एक दिन सबेरे से शाम तक मैं व्यर्थ ही छींक होने की प्रतीक्षा मे खड़ा रह चुका था तो दूसरे दिन वे मिथ्या छींकों की, जिन्हें शास्त्र में 'प्रेरित छीक' संज्ञा दी गई है, आयोजना करने लगे। किन्तु अपने संकल्प के अनुसार मैं केवल शुद्ध स्वाभाविक छीक के संकेत पर ही रवाना होना चाहता था।

आखिर सन्ध्या होते होते किसी ने सामने ही इतनी जोर से दे छींका कि मै चौक गया। घबरा कर साइकिल पर चढ़ने लगा तो पैडिल पर से जूता फिसला और मैं साइकिल समेत गिर पड़ा। जल्दी से उठा और फिर सवार होकर चल दिया।

मेरे सामने अब केवल एक यही समस्या थी कि मै जाऊँ तो जाऊँ कहा और किस लिये? इस प्रश्न ने मुझे बहुत देर तक परेशान किया मै साइकिल दौड़ाता हुआ तो चला जा रहा था किन्तु अपने लक्ष्य का मुझे ही ज्ञान था। इसी विचार में लीन मुझे लाउड-स्पीकर से संगीत की ध्वनियां

सुनाई दीं । आवाज़ की दिशा से मैंने अनुमान लगाया कि वे कालेज की ओर से आ रही हैं मेरा अनुमान सही उतरा अपनी साइकिल को कालेज की ओर मोड़ कर जब मैं वहां पहुंचा तो संगीत सम्मेलन के एक कार्यक्रम की वहां योजना मुझे देखने को मिली । जगह सब भर चुकी थी कुर्सियों के पीछे भी काफी लोग खड़े थे । साइकिल में ताला डाल मैं भी एक ओर पीछे जा खड़ा हुआ किन्तु इस स्थान से गायक को देखने में एक खम्भे की ओट पड़ जाती थी । मुझे कुछ आनंद नहीं आया । फिर पक्के सङ्गीत ने तो मामला और चौपट कर दिया । फिल्मी गीत की प्रतीक्षा में धैर्य धारण कर मैंने अपने कोट की जेब से मेवा निकाल कर चुपचाप चबाना प्रारम्भ कर दिया । उधर तो वह शास्त्रीय सङ्गीत अपनी टेक से अंतरा पर ही नहीं उतर रहा था और इधर मेवा मिश्रित में बादाम भी कड़वे निकले । दिल ने उचाट खाया । मैं चल पड़ा ।

अब मेरी चेतना जागी कि देखें छींक का क्या प्रभाव रहा । उत्सुकता से साइकिल पर नजर फेंकी । यथा स्थान रक्खी थी । चिन्ता दूर हुई । जेब से चाबियों का गुच्छा निकालकर साइकिल में लगा हुआ ताला खोलने का जब मैंने प्रयत्न किया तो चाबी ने ताले के अन्दर जाने से इन्कार कर दिया काफी जोर लगाया पर वह अपनी हठ पर कायम हो गई । जेब में पड़े हुये मेवा का कोई टुकड़ा सम्भवतः चाबी में जा डटा था । उसे खुरच कर बाहर निकालने के लिये सुई या कोई नोकदार चीज चाहिये थी वहां वह कहां मिलती ? परेशान होकर साइकिल टांगे हुये ही चलने के लिये मैं विवश था । सोच रहा था कि यह भी अच्छा हुआ जो मैं बीच ही से चला आया नहीं तो उत्सव समाप्ति के समय तो उस विशाल जन समुदाय के बीच इस प्रकार चलने में तो मेरा मजाक बन जाता । आँगन के बाहर भी मैं न हो पाया था कि एक छोटी सी भीड़ ने दौड़ कर मुझे घेर लिया । उनमें से एक ने व्यङ्ग पूर्ण मुद्रा में कहा—हजरत कितनी साइकिलें जमा कर ली हैं । मैंने इसका अर्थ समझ लिया और चाबी का गुच्छा निकालकर अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण किया । उनका क्रोध एक मधुर मुसकान में

शीघ्र ही बदल गया। आपस में अलपीन की खोज करने के लिये पूँछ ताँछ कर चुकने पर वे सब यथा स्थान लौट गये। घूम घूम कर कई बार उन लोगों ने मुझे देखा। अब मैं भी साइकिल को पहले की भांति नहीं ढो रहा था वरन् आगे का पहिया भूमि पर घूम रहा था और पीछे का पहिया सड़क की सतह से २-४ इञ्च ही ऊपर था। हां मुझे बगल से इस प्रकार साइकिल घसीटने में असुविधा अधिक थी किन्तु और मैं कर ही क्या सकता था।

चौराहे पर पुलिस वाले से भी उसी प्रकार दुर्घटना हुई। वह बिना चौकी तक ले जाये कब मानने वाला था। यह अच्छा ही हुआ। वहाँ मुझे मुद सुलभ हो गई और चाबी से कुड़ा निकल जाने पर साइकिल मुक्त हो गई। मैं पूर्ववत् सवार होकर सकुशल घर लौट आया और जब प्रयोग के अनुभव अपने प्रस्तावित ग्रन्थ 'छींक विज्ञान, में लिखने के लिये बैठा तो यह निर्णय न कर सका कि उक्त घटनाओं में छींक से प्रभावित अंश कितना था ?

—:—:०:—:—

यशोजीवी चम्पूकार संघ

'संघ' शरणं गच्छामि' के प्राचीन संकल्प में उसके विशिष्ट नामाभाव विकल्प रूप से एक नवीन शंका को उत्पन्न कर दिया है। बुद्धिवादियों की दृष्टि के सामने अनेक संघ है, जैसे—कवि संघ, लेखक संघ 'साहित्यकार संघ' पत्रकार संघ, बुद्धिजीवी सघ, श्रमजीवी संघ, आदि न जाने कितने नामों के ये संघ अपने अपने सदस्यों के हितों की रक्षा का बिगुल बजाकर उन्हें सावधान किये हैं। इन्सान को दो भागों में बांटा गया है :—

एक श्रमजीवी और दूसरा बुद्धिजीवी। किन्तु इन भेदों में विभाजन का मुख्य आधार 'धनोपार्जन' माना गया है, और धन को ही जीवन का एकमात्र साधन स्वीकार कर लिया गया। जिस प्रकार श्रम जीवी के साथ भ्रम जीवी वर्ग भी उपेक्षित नहीं हो सकता, उसी प्रकार बुद्धिजीवी के साथ अशुद्धिजीवी भी नहीं भुलाया जा सकता। अनेक परिवार 'भ्रम' के अस्तित्व तथा 'अशुद्धियों' की आवृत्ति के कारण ही जीवित हैं। समाज–कल्याण, पुलिस, न्यायालय, आडिट एव विविध परीक्षा बोर्ड आदि राजकीय विभाग भी भ्रम और अशुद्धियों की शोध संस्थाएँ हैं। किन्तु इन सब का परमार्थिक लक्ष्य की अपेक्षा आर्थिक लक्ष्य ही अधिक है।

इन पंक्तियों के लेखक की जानकारी में एक ऐसे संघ का भी अस्तित्व हैं जिसने अर्थ के सम्बन्ध में कभी विचार भी नहीं किया चाहे कितना ही अनर्थ क्यों न हो गया हो। वह है—यशोजीवी चंपूकार सघ। इसके सदस्यों ने न तो कभी विधान बनाने में अपना अमूल्य समय खोया और न किसी उत्सव और अधिवेशन की आयोजना कर जनता को भरमाया। इसके कर्मठ कार्यकर्ता अपनी 'आकर्ण' लेखनी

के बल पर साहित्य सौरभ को 'सेण्ट' के रूप में परिवर्तित कर दिगदिगंत में व्याप्त करने के लिये कटिबद्ध हो गये। इन बेचारे 'सत्य कहौं लिख कागद कोरे' के अनुयायियों को कल्पना से काम लेने की कभी आवश्यकता भी नहीं पड़ी! अन्य कवि एवं लेखकों के उद्धरणों को वे देकर अपनी 'दाद' भरी लेखनी की 'इम्दाद' से उन्हें तो लेख लिखना भर अभिप्रेत था। जिस प्रकार नवीन मंदिर बनवाने वाले से प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार करानेवाला धार्मिक दृष्टि से अधिक पुण्यवान माना जाता है, उसी प्रकार हमारे इन संघ के सदस्य भी धर्मात्मा है। वे अपने किये का फल भी नहीं भोगना चाहते। 'मा फलेषु कदाचन' के प्रति इतनी अधिक आसक्ति और कहां? 'छपास' के शौक को छोड़कर उन्हें संसार में और कोई 'आस' नहीं है। इस मिथ्या संसार में न जाने कहाँ कहाँ से 'पत्र' के टुकड़े जोड़ कर इन लोगों ने कथरी बनाई है। इस संघ में कल्पना के बल पर बात कहना अवैध होने पर भी 'सत्यं' के जिस रूप का दर्शन किया जाता है, उसमें 'शिवं' और 'सुन्दरम्' की मिलावट बिना सोचविचार के सब जगह कर देने की छूट रख दी गई है। इससे हमें प्राचीन या अर्वाचीन सभी साहित्य को कल्याणकारी सिद्ध करने में पूरी पूरी सहायता और सफलता मिली है। चंचूकार संघ की मान्यता के अनुसार किसी भी प्राचीन हस्तलेख में लिपिकर्म से भूल हो जाने की संभावना को स्थान नहीं है। अभी की बात है कि एक 'भगत जी' तुलसी कृत रामायण के बालकाण्ड में बाल ढूढ़ने के लिये बड़ी उत्सुकता से पन्ना पलट रहे थे। पर जब उन्हें कुछ न मिला तो 'अयोध्या' को भी देख डाला। तदनन्तर अरण्य को सरण्य मान कर वे और आगे बढ़ते गये। धीरे धीरे किष्किन्धा पर पहुँचे ही थे कि मैं भी अनायास उनके घर जा पहुंचा। मैंने कहा 'भगत जी' बालकाण्ड तो कभी का निकल चुका यह तो बालिकाण्ड है। उन्होंने कहा कि 'सब जगह रामायणों में बाल निकले है इसमें भी कहीं न कहीं अवश्य निकलेंगे। जरा आप तो देखिये। मैं तो एक एक पन्ना पलटते पलटते थक गया हूं।' यह कह कर उन्होंने

रामचरित मानस को वैसा ही मेरे सामने बढ़ा दिया। जो स्थल खुला था उसी पर थी यह चौपाई—

नाथ शैल पर कपि पति रहई। सो सुग्रीव दास अहई॥

इसे पढ़ते ही मैंने कहा लीजिये यह है बालकाण्ड में बाल। हनुमान जी ने रामचन्द्र जी से सुग्रीव का परिचय कपिपति कह कर किया, फिर उन्हीं सुग्रीव को 'दास तव अहई' कह कर राम का दास बता दिया। पूर्वापर प्रसङ्ग को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ दास के स्थान पर दूसा पाठ रहा होगा और किसी प्रति में लिपिकर्ता ने उसे दास लिख दिया होगा। क्योंकि आगे की अर्धाली में तेहि सन नाथ मयत्री कीजे में वह दास भाव समाप्त होकर सख्य भाव का वर्णन है। और समान शीलः व्यसनेषु सख्यम् के अनुसार राम और सुग्रीव के साथ राज्य से निर्वासित होने की, नारी के अपहरण की समान समस्यायें थी, जिनकी मानवीय स्तर पर पूर्ति के लिये परस्पर सहयोग की आवश्यकता थी। अतः दास और दसा में यह बाल बराबर अन्तर भगत जी को दिखाई तो देने लगा किन्तु वह बोले कि यह तो बाल की खाल है

मैंने कहा कि रामायण की चौपाइयों में से बाल की खाल निकालने में ही तो जब कथा वाचक जुटे रहते है किन्तु वे उसके उपलब्ध पाठ को यथावत् मानकर ही यह सब कला दिखाते हैं। अपने गद्य पद्य मय भाषणों से वे अपना अर्थ निकाल लेते हैं। कुछ श्रद्धालु गुण गहहि पय से भी आगे बढ़ जाते है। एक सज्जन ने अपने बड़े लम्बे चौड़े भाषण में मूक होहिं बाचाल का अर्थ करते हुये यह बताया कि वाचाल होना तो एक अवगुण है अतः तुलसीदास जी महाराज का यह अभिप्राय नहीं होगा कि भगवान की कृपा से मूक में यह अवगुण उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये इसका अर्थ है कि भगवान की कृपा से वाचाल भी मूक हो जाते हैं। इतनी ही बात यदि उन्होंने एक घन्टा से कम समय में कहदी होती तो मैं वाचालता को दुर्गुण मानलेने पर राजी हो जाता। यह अर्थ जान

कर मैं भी :—

'करत करत अभ्यास के जड़मत होत सुजान।' में यह अर्थ पा सकता हूँ कि किसी एक ही विषय पर अधिक अभ्यास करने के सुजान भी जड़ बुद्धि हो जाते हैं इस लिये अभ्यास का निरन्तर उपयोग नितान्त अवांछनीय है।

यह बातें यशोजीवी चमत्कार संघ के उद्देश्य से कुछ दूर चली जा रही थीं अतः लगाम खींचकर मुझे संक्षेप में इस संघ की मान मर्यादा के लिये यही कहना पर्याप्त है कि उद्धरणवाद के सिद्धान्त को लेकर लीक पीटते हुये आशंसात्मक साहित्य सृजन इसका मुख्य लक्ष्य है। इसके सदस्यों की ईमानदारी में तनिक भी संदेह नहीं है क्योंकि वे दूसरे की रचनाओं को अपनी कह कर कभी प्रकट नहीं करते। मौलिक चमत्कार इस संघ के सदस्य नहीं हो सकते क्योंकि वे यशोजीवी श्रेणी में नहीं स्वीकार किये जा सकते। काव्यं यशसे तक ही इसकी सीमा है। व्यवहार कुशलता और कान्ता सम्मित उपदेशों की इस संघ को आवश्यकता नहीं है।

—:o:—

मर्यादा-वीर

बहुत दिन नहीं बीते जब पगड़ी बांधने वाले अपने आप को विशेष सम्मानित व्यक्ति मानते थे। साफा वाले भी उनमें मिलने का प्रयत्न करते रहे। टोपी लगाकर लोग साधारण स्थानों में तो हो आते थे किन्तु राज प्रसाद आदि के लिये ये स्वयं ही अपने को हीन समझते थे। जब ऐसे किसी विशेष स्थान अथवा समारोह में इन्हें सम्मिलित होना होता था तो टोपी का स्थान साफा तो ग्रहण कर ही लेता था। नंगे सर कहीं जाने आने की बात कल्पना में भी नहीं थी।

सन् १९२१ के आस पास की इस स्थिति को मैंने देखा है। तब से अब तक क्या क्या परिवर्तन हुये इन्हें गिनाने के लिये लेखनी नहीं संभाली है, क्यों कि संसार परिवर्तन शील है। सदा ही उसमें परिवर्तन हुये हैं, और होते ही रहेंगे। दीपक के नीचे होने वाला अंधकार अब बिजली के ऊपर पहुँच गया; पैर में धारण किया जाने वाला चमड़ा टाँग के ऊपर तक चढ़ गया है; नंगे पैर की अपेक्षा अब नंगे सर रहना समाज ने अपना लिया। इसी उथल पुथल में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह भी हो गया कि जो लेखनी पहले मसि में प्रवेश करती थी उसके पेट में अब मसि ही स्वयं आ बसी है। किन्तु यह सब परिवर्तन इतने धीरे धीरे हुये कि हम उन्हें जान भी न पाये। इनके फलस्वरूप साहित्याचार्यों को 'युद्धवीर', 'धर्मवीर', 'दानवीर', 'कर्मवीर' नाम के चार वीरों में 'भाषण वीर', 'श्रम वीर', 'बुद्धि वीर', 'वचन वीर' आदि अनेक नवीन भेदों की प्रतिष्ठा करना आवश्यक हो गया है। भगवान रामचन्द्र ने अपने आचरण एवं लीला के द्वारा भले ही लोक मर्यादा का एक रूप

सामने रखा । किन्तु उस विषय पर उनके भाषणों का अभाव साहित्य शोधकों को सदा से खटकता रहा है ।

आगे आने वाले युग में भी ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने प्रचलित मर्यादाओं की रक्षा में अपनी शक्ति लगाई ।

एक बुजुर्ग को मैंने देखा है जिन्हें लोग 'छाता महाराज' कहा करते थे । यह उनका वास्तविक नाम न था । उनका यह लोक-नाम इतना व्यापक हुआ कि अब उनके सही नाम का पता चलाने वाला आचार्य पद अर्जित कर सकता है ।

हां तो, छाता महाराज ने जिस लोक सेवा के लिये अपना जीवन समर्पित कर दिया था वह था राज प्रासाद की मर्यादा रक्षा । वे किसी व्यक्ति को सामने से छाता लगाये हुये नहीं निकलने देते थे । यदि कोई ऐसा करता तो उससे लड़ने के लिये कटिबद्ध रहते । "छाता उतार के का नारा लगा कर वे छाता बन्द कराने के लिये टूट पड़ते थे, क्योंकि जन साधारण का राज प्रासाद के सामने से छाता लगाये जाना राजसी प्रतिष्ठा पर आघात था । उन्हें अपनी इस सेवा में सदा ही सफलता मिली और आज इसी कारण उनका नाम भी अमर है । निष्काम सेवा का यही पुरस्कार है ।

इसी प्रसंग में मुझे एक और घटना याद आ गई । बिना पगड़ी या साफा बांधे किले के अन्दर जाने का निषेध था । जब टोपी धारी भी नहीं जा सकते थे तो नंगे सिर वालों की तो बात दूर की रही । द्वारपाल का एकमात्र यही कर्तव्य था कि वह किले के अन्दर जानेवालों का इस दृष्टि से निरीक्षण करता रहे । एक बार जब एक टोपीधारी अंग्रेज़ किले के अन्दर जा रहा था तो उसे देख कर द्वारपाल असमंजस में पड़गया कि टोप को किस रूप में स्वीकार किया जाय ? न तो वह वैध 'पगड़ी या साफा' ही था और न टोपी ही । फिर वह अंगरेज था और राजा से ही मिलने के लिये आया था । इन दोनों बातों ने द्वारपाल को किंकर्तव्य

विमुक्त बना दिया। ~~अतः वह बिना कुछ~~ कहे सुने उसके पीछे पीछे वहां राजा के निकट तक चलने को उद्यत हुआ। मन में उसे सदा ही यह आशंका रही कि कहीं महाराज उसने इस बात पर अप्रसन्न न हो उठें। परन्तु वह जानता था कि 'नंगे सर' पर महाराज को जितनी चिढ़ है उतनी टोपी पर भी नहीं, इस कारण वह विशेष विचलित नहीं हुआ।

आगन्तुक महोदय ज्यों ही राजा के सम्मुख पहुँचे कि उन्होंने अभिवादन करने के निमित टोप अपने सर पर से उतार कर हाथ में ले लिया। तुरन्त ही द्वारपाल ने कड़क कर कहा कि: —'क्यों साहब एक तो मैं ने आप के साथ यह सलमनसाहत बर्ता कि बिना पगड़ी या साफा के अन्दर तक चला आने दिया जिसपर आप का यह बदला कि महाराज के सामने पहुंचते ही लगा लगाया टोप भी सर से उतार लिया। उपकार का यह बदला आप दे रहे हैं?'

यह कह कर द्वारपाल उस अंगरेज से झगड़ने के लिये प्रस्तुत ही था कि परिस्थिति परख ली गई और उसे समझा बुझा कर शान्त कर दिया गया।

उक्त प्रकार के मर्यादावीरों से मिलते जुलते कुछ लोग शिक्षक समुदाय में भी पाये गये हैं। एक पाठशाला में सरस्वती पूजन हो रहा था। जिस कक्षा में उत्सव की आयोजना की गई थी उसमें अध्यापकवर्ग, एवं अन्य अतिथि थे। कुछ विद्यार्थी भी उसमें थे परन्तु स्थानाभाव के कारण अधिकांश विद्यार्थियों को संलग्न ऐसे कक्ष में बैठना पड़ा जिसमें से समस्त विद्यार्थी उत्सव के कार्यक्रम को भलीभांति देख सुन नहीं पाते थे। अतः हाथ में लकड़ी लिये हुये एक अध्यापक जो उन्हें अपने 'अनुशासन सौरव' के बल पर शान्त बैठाये रखने का कर्तव्यपालन कर रहे थे। उस जलसे की स्मृति केवल उसी दृश्य के कारण बनी है। इसी प्रकार एक अन्य पाठशाला में एक उत्सव की आयोजना में संगीत का कार्यक्रम था। मैं भी समय पर वहाँ पहुंच गया। उस पाठशाला के बहुत से छोटे छोटे

विद्यार्थी भी आगये थे। कार्यक्रम प्रारंभ होने में कुछ विलंब था इस बीच बालक आपस में बातचीत करने लगे। यहां एक 'लकुट-वीर' खड़े हो कर "माइक पछाड़" कंठ से इस कर्कश वाणी में गरजे कि एकदम सन्नाटा छागया। विद्यार्थी तो खैर कुछ 'भुसभुस' करते रहे क्यों कि, ऐसा प्रतीत होता था कि उनके कान उस प्रखर स्वर के आदी होगये थे किन्तु अपने राम को तो श्रवण पुटों की रक्षा करने के लिये उन्हें हथेलियों से बन्द कर लेना पड़ा, नहीं तो आशंका थी कि जिस संगीत के श्रवण हेतु वे उत्सुक थे, वह उन्हें सुनाई ही न देता।

शिक्षा संस्था का एक और अनुभव सुनिये। अभी की बात है एक समारोह में अनेक बालक बैठे हुये थे। एक अध्यापक जी को काम सौंपा गया कि वे उन बालकों को अपने स्थान से उठने न दें। कर्त्तव्यनिष्ठ इन अध्यापक जी उस समय एक साथ बड़ा परिश्रम पड़ा जब वहां राष्ट्रीय गीत "जन गण मन" गाया गया। राष्ट्रीय गीत के सम्मान में जब अन्य लोग खड़े हुये तो वे बालक भी एक साथ उठे; किन्तु क्या मजाल कि वे खड़े रह पाते। झपट कर अध्यापक जी ने एक एक को बैठा ही दिया।

एक बार मेरे सामने भी सार्वजनिक सभा में अनुशासन मर्यादा से संबंधित एक समस्या उत्पन्न हो गई थी। सन् १९३१ के १३ सितम्बर की बात है। एक कविगोष्ठी थी उन दिनों समस्या पूर्ति का अधिक दौरदौरा रहा करता था। इस गोष्ठी के लिये समस्या थी "मलिन्द मुख मोरौ ना"। कार्य आरंभ होने के पूर्व उपस्थित कवियों में से एक सज्जन के सभापतित्व का प्रस्ताव किया गया समर्थन हुआ। अनुमोदन हुआ। किन्तु वे सज्जन अध्यक्ष का आसन ग्रहण करने को राजी न हुए। इस प्रकार की दो एक बार की मधुर 'नाहीं' तो अच्छी लगती है, किन्तु वे तो कुछ ऐसे जड़ गये कि हमारी गोष्ठी का कार्य ही आगे न बढ़ सके। अन्त में प्रस्तावक होने के नाते मैं और समर्थक होने के

जाते मेरे एक मित्र उठे और प्रस्तावित सभापति जी के हाथ पकड़ कर उन्हें आसन ग्रहण करने के लिये हम लोग आग्रह करने लगे। किन्तु जब इस अनुरोध के विरोध में वे कुछ लेट से गये तो परिस्थिति को संभालने के लिये उपस्थिति में से एक और कर्मठ कार्यकर्ता उठे और उन्होंने सभापति जी के दोनों पैर अपने हाथों में पकड़ कर जोर से कहा-- "बोलो कृष्ण बल्देव की जै"। सब लोगों ने एक साथ जय घोष किया और उसी ध्वनि के साथ हम लोगों ने सभापति जी को टांग लिया। अपने हाथ पैर फड़फड़ाते हुये उन्होंने उस पद को स्वीकार करने का वचन दिया। किन्तु उनके इस वचन पर ध्यान न देकर हम लोगों ने उन्हें अध्यक्ष के आसन पर लाकर रख दिया। हमारे इस आग्रह पूर्वक अनुरोध की सराहना कई दिनों तक होती रही और सभापति जी भी हम लोगों की अटूट श्रद्धा के लिये अन्त में आभार प्रकट करके ही उठ सके।

--:-:o:-:--

पुस्तकालयों के लिये उपयोगी साहित्य

जीवन के क्रम

बुन्देलखंड के कोकिल श्री भैयालाल व्यास की कविताओं का प्रकाश में आने वाला यह प्रथम संकलन है। व्यास की कविताओं में जो जीवन की उष्णता है, अनुभूति की तीव्रता है और भाषा की रवानगी है, वह प्रत्येक सहृदय पाठक का मर्म छू लेती है। बहुत सी कविताएँ तो ऐसी हैं जिनमें पाठक आज के युग की समवेदना का मूर्त आकार पा जाता है। सुन्दर छपाई आकर्षक गेट अप। मूल्य एक रुपया चार आना।

खलिहान की रात

इस पुस्तक में श्री प्रभुदयाल गोस्वामीने मानवीय सहानुभूति को उकसाने वाली चार सुन्दर बुन्देली लोक-कथाओं का सहज रूपान्तर प्रस्तुत किया है। यह बालकों एवं नव-शिक्षितों के लिये बहुत ही उपयोगी है। प्रत्येक कहानी का चित्र भी दिया गया है। बड़े टाइप में सुन्दर छपाई। सचित्र आवरण। मूल्य छः आना।

विद्रोही बानपुर

इसमें श्री वासुदेव गोस्वामी ने बुन्देलखण्ड में सन् १८५७ के गदर का सुन्दर तथा प्रामाणिक वर्णन किया है। विन्ध्य सरकार द्वारा सन् १९५४ में प्रथम छत्रसाल पुरस्कार से सम्मानित। ऐतिहासिक महत्व के तीनपत्रों की चित्रलिपियों से पूर्ण। मूल्य एक रुपया चार आना।

त्रिवेणी के संगम पर

श्रीवासुदेव गोस्वामी की विभिन्न विषयों पर ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली की ३६ कविताओं का सरस एवं सचित्र संकलन। मध्य-प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कार वितरण एवं नार्मल स्कूल के पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत। रसज्ञों से प्रशसित। मूल्य एक रुपया चार आना।

पुस्तक मिलने का पता—

गोस्वामी पुस्तक सदन : जानकी पार्क रोड : रीवा